जीवन मनोविज्ञान

डॉ. कृष्ण दत्त
पूर्व चिकित्सा मनोवैज्ञानिक, केजीएमयू, लखनऊ
निदेशक : अस्मिता (मन्दगति प्रशिक्षण एवं मानसिक स्वास्थ्य केन्द्र)

त्र्यम्बक प्रकाशन
नेहरू नगर, कानपुर

I.S.B.N. : 978-81-936018-3-9

पुस्तक : जीवन मनोविज्ञान
सम्पादक : **प्रो. उमाशंकर दीक्षित**
पूर्व प्राचार्य, ब्रह्मानन्द कालेज, कानपुर
प्रकाशक : त्र्यम्बक प्रकाशन
109/408 बी–1, नेहरू नगर, कानपुर
मो. – 9336832305, 9307254581, 9450141196
संस्करण : प्रथम, सन् 2018
सर्वाधिकार : लेखकाधीन
मूल्य : ` 250.00 मात्र
मुद्रक : त्र्यम्बक ग्राफिक्स, कानपुर
सहयोग : **पालीवाल प्रकाशन**
117/एच–1/02, पालीवाल भवन,
पाण्डु नगर, कानपुर – 208 005

JIVAN MANOVIGYAN
by – *Dr. Krishna Dutt*
Price : Rs. Two Hundred Fifty Only

समर्पण

उन सभी
सुधी जनों को
जो
जीवन (चेतना) के
विकास हेतु
सतत्
प्रयासरत हैं।

अस्तित्वगत प्रेरणा

जीवन एक रहस्यमय यात्रा है. यहाँ जितना हम जान पाते हैं उससे कहीं ज्यादा जानने को हमेशा शेष रहता है। आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, मनो वैज्ञानिक, सर्जक, कलाकार आदि प्रत्येक विधा से जुड़े लोग जीवन के रहस्यों में प्रवेश करने की कोशिश करते रहते हैं।

इसी दिशा में मनोविज्ञान ने भी अपने गहरे प्रयास किये हैं और मानवीय मन की गुत्थियों को समझने की चेष्टा की है।

डॉ. कृष्णदत्त जी की मनोविज्ञान के विषयों को सरल भाषा में प्रस्तुत करती हुई यह पुस्तक अपने आप में करुणा, ज्ञान और अंतर्दृष्टि का अद्‌भुत समन्वय है. कृष्णदत्त जी पेशे से मनोवैज्ञानिक जरूर हैं लेकिन अपने अंतरतम में वो एक संवेदनशील और प्रेमपूर्ण साधक हैं, ऐसे साधक जो दूसरों के जीवन के अँधेरे और दु:ख को मिटाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

मैं उन्हें शुभाशीष देता हैं उनकी इस पुस्तक के लिए और जीवन की इस अविराम यात्रा के लिए कि स्वयं अपनी चेतना के आलोक से भरे रहें और दूसरों के जीवन तक भी इस प्रकाश को ले जाते रहें।

प्रेम और आशीष !

– **अनंत श्री**

भूमिका

मन का क्या? पल में यहां अगले पल वहां। डॉ. कृष्णदत्त प्रख्यात मनोविज्ञानी हैं। मनस्विद्। वे मनीषी हैं। जब मन केन्द्रीभूत होता है तब मन और ईश एक हो जाते हैं; ऐसे मन से आच्छादित बुद्धि मनीषा है। मन और ईश का एकात्म। मैं मनमौजी हूँ। हम दोनों की मन मिलौवल गाढ़ी प्रीति में है; लेकिन मन-मौजी और मनीषी में अंतर तो भी है। उन्होंने 'जीवन मनोविज्ञान' पर पुस्तक लिखी। भूमिका के लिए मुझसे कहा। हमारा मन पहले सन्न हुआ - मनोवैज्ञानिक की पुस्तक पर मनमौजी की टिप्पणी। फिर प्रसन्न हुआ। जीवन सिद्धि अभी मिली नहीं। इसी बहाने प्रसिद्धि तो मिलेगी ही।

वे देश के प्रतिष्ठित किंग जार्ज मेडिकल कालेज लखनऊ में चिकित्सामनोवैज्ञानिक रहे हैं। मन विवेचन पर उनका अध्ययन गहरा है। इस पुस्तक में उन्होंने गूढ़ को सरल और ठोस को तरल बनाया है। मैंने मन को देखा है। आँखों से नहीं। मन को मन से ही। हमारा मन रम्य है। मन करता है - उड़ूं आकाश में पंख फैलाकर। लेकिन तन में पंख नहीं। मन तन की क्षमता देखता ही नहीं। मित्रों को तेज रफ्तार चलते देखता हूँ। मन करता है तेज चलूं। तन साथ नहीं देता। सौन्दर्यबोध से उफनाया करता है मन लेकिन तन च्वयवनप्राश खाकर भी सामान्य नहीं होता। मन नाचने को प्रेरित करता है - नाचूँ कैसे? तन नाचने लायक है ही नहीं। मन मधुप्रिय है लेकिन आधुनिकता मधुमेही है। शुगर फ्री मिठाई मन को तृप्त नहीं करती। मधुर शब्दों से ही काम चलाता हूँ। मन के रहस्य अपरंपार हैं।

मन आनन्दित करता है और दुखी भी। पतंजलि ने योगसूत्र (1.5) में मन की 5 वृत्तियाँ बतायी हैं - वृत्तय: पंचतय्य:। कहा है कि वे दुखी करती हैं और दुखमुक्त भी करती हैं। पतंजलि का योग मन मुक्ति का विज्ञान है। मन चंचलता ऋग्वैदिक काल में भी मनुष्य की मुख्य समस्या है। ऋग्वेद दुनिया की प्रथम प्रकट अनुभूति है। ऋग्वेद में मन की चंचलता का सुन्दर वर्णन है। कहते हैं जो "जो मन बहुत दूर वन या पर्वतों की ओर चला गया है, उसे हम वापिस बुलाते हैं, जो मन बहुत दूर आकाश या अंतरिक्ष तक गया है, उसे हम वापिस लाते हैं। बार-बार कहते हैं कि हे मन यहीं आओ, इसी संसार में आपका जीवन है।" ऋग्वेद में संसार को बेकार या माया नहीं कहा गया। संसार आनंद का क्षेत्र है। यह 'दक्षमन' से ही सम्भव है। मन भागता है, न भागे तो व्यक्ति को परमशक्तिशाली और सौभाग्यशाली बनाता है। यजुर्वेद (2.21) में मन के नियन्त्रक देव को 'मनस्पत' कहा गया है। कहते हैं "हे मन के परिपालक यह यज्ञ आहुति आपको समर्पित है।" वेदों में भरापूरा विज्ञान है और परिपूर्ण वैज्ञानिक विवेक। यजुर्वेद (2.24) की प्रार्थना शुद्ध सांसारिक है और हम सबके लिए उपयोगी भी। कहते हैं "हम तेजस्विता और पोषक तत्त्वों से भरपूर हों। मन शुभ संकल्प से युक्त हो। हम सम्पूर्ण समृद्धिशाली हों।"

समृद्धि भी मनोमय धाणा है। घर, साधन, वाहन और धन ही समृद्धि नहीं है। लोकमंगल से पूर्ण मन आंतरिक समृद्धि का क्षेत्र है। आधुनिक मनोविज्ञान भी इसी निष्कर्ष पर है। हम जैसा सोचते हैं, हमारा भावजगत उसी के अनुरूप होता जाता है। हम हीन विचार लाते हैं, हीन होते जाते हैं। हम शुभ विचार लाते हैं। शुभत्व की यात्रा पर होते हैं। तब हमारा अन्तर्मन शुभत्व से परिपूर्ण होता है। शिव-शुभतत्व ही सौन्दर्य रूप में प्रकट होता है। सत्य, शिव और सुन्दर की ऐश्वर्य त्रयी यही है। प्रार्थना का विज्ञान भी यही है। प्रार्थना हमे अन्तर्तम् को पुष्ट करती है। हम एकाकी नहीं होते, चित्त अस्तित्व से जुड़ता है। प्रगाढ़ भाव में हम इसी अस्तित्व के अन्तर्भाग हो जाते हैं। मन की

शक्ति बड़ी है, मन ही शान्ति और अशान्ति का क्षेत्र है। वैदिक ऋषि यह तथ्य जानते थे। यजुर्वेद (36.17) में बार-बार गाने योग्य शान्ति मन्त्र हैं ''द्यौ शान्तिदायक हों, अन्तरिक्ष और पृथ्वी शान्तिदायक हों, जल शान्ति दें, वनस्पतियाँ औषधियाँ शान्ति दें, विश्व देव शान्ति दें, सम्पूर्ण विश्व में शान्ति हो। शान्ति भी हमें शान्ति दे।'' मन की चंचलता अशान्ति है और मन की दिव्यता शान्ति।

यजुर्वेद यज्ञ उपासना के लिए विख्यात है लेकिन यजुर्वेद को 'मन' का विज्ञान कहा गया है। कहते हैं ''हम वाणी रूप ऋचा की शरण में जाते हैं और मन रूप यजुर्वेद की - ऋचं वाचं प्रपद्ये, मनो यजुः। (यजुर्वेद 36.1)'' ऋग्वेद के मन्त्रों को ऋचा कहते हैं और यजुर्वेद के मन्त्रों को यजुः। यहाँ ऋग्वेद के मन्त्र का स्वरूप वाणी है और यजुर्वेद का मन। शतपथ ब्राह्मण में यजुः को ''यत् और जूः'' का संयोग बताया गया है। यहाँ यत् का अर्थ गतिशील है और जूः का अर्थ आकाश है। इस सन्दर्भ में यजुः का पूरा अर्थ हुआ - आकाश में विचरणशील - गतिशील। मन ऐसा ही है। यजुर्वेद (34.1-6) में मन को खूबसूरत बनाने की महत्त्वाकांक्षा है। स्तुति है ''जागृत दशा में मन दूर-दूर भागता है, तो सुप्तावस्था में भी उसी तरह दूर-दूर भ्रमण करता है। वह इन्द्रियों का ज्योतिरूप है। जीव का यही एक दव्य माध्यम है - ज्योतिर्एकं। स्तुति है कि ऐसा हमारा मन शुभ संकल्पों वाला बने - तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।'' यजुर्वेद का यह सूक्त बड़ा प्यारा है। यहाँ मन की महिमा है, सूक्ष्म विवेचन है। आधुनिक सन्दर्भ में यहाँ मनोविज्ञान के गहन विश्लेषण हैं। कहते हैं ''श्रेष्ठकर्म करने वाले विद्वान मनीषी इसी मन से सत्कर्म करते हैं। यह सम्पूर्ण प्राणियों में विद्यमान है। ऐसा हमारा मन शुभ संकल्पों वाला हो - तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।''

मन प्रेरणा से ही सत्कर्म और मन प्रेरणा से ही अपकर्म। मन अच्छा हो तो जीवन में सौन्दर्य खिलता है, मन बुरा हो तो पतन और अधोगमन। कहते हैं, ''ज्ञान सम्पन्न चेतनशील मन सभी प्राणियों के

भीतर 'अमर ज्योति' है। इसके अभाव में कोई भी कार्य सम्भव नहीं होते। ऐसा हमारा मन शुभ संकल्पों वाला हो।'' (वही 3) मनुष्य के अन्तःकरण की दिव्यज्योति है मन। कहते हैं ''इसी मन की क्षमता से हम प्राचीन-भूतकाल का ज्ञान पाते हैं, वर्तमान को जानते हैं और भविष्यकाल को भी प्रत्यक्ष जान लेते हैं। ऐसा हमारा मन शुभ संकल्पों वाला हो।'' (वही 4) यहाँ मन, भूत, भविष्य और वर्तमान के ज्ञान का उपकरण भी है। मन की क्षमता भविष्य को भी प्रत्यक्ष देखने की है। आगे कहते हैं - ''इसी मन में ऋचाएँ स्थित हैं, इसी में साम और यजुष् के मन्त्र हैं। रथ के पहिए के आरों की तरह इसी मन में लोकमंगल का ज्ञान प्रतिष्ठित है। ऐसा हमारा मन शिव संकल्पों वाला हो।'' (वही 5) मन का क्षेत्र बड़ा है। आधुनिक कम्प्यूटर की भी सीमा है। उसके भीतर आंकड़ा/सामग्री भरने की क्षमता की सीमा है लेकिन मन में ऋग्वेद, साम, यजुर्वेद और समूचे लोकमंगल के विज्ञान भरे हुए हैं।

यजुर्वेद का यह सूक्त 'शिव संकल्प स्तोत्र' कहा जाता है। सिर्फ 6 मन्त्र हैं, लेकिन मन का विवेचन गहन है। हरेक मन्त्र के अन्त में ''तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु - वह हमारा मन शुभ संकल्पों वाला हो'' जुड़ा हुआ है। यहाँ मन को लगातार प्रशिक्षित करने और लोककल्याण की ओर प्रेरित करने की प्रार्थना है। अन्तिम मन्त्र में कहते हैं ''कुशल सारथी गतिशील अश्वों को इच्छित लक्ष्य की ओर अपने नियन्त्रण से ले जाते हैं। इसी प्रकार जो मन हम सबको आदर्श लक्ष्य तक ले जाता है, कभी बूढ़ा नहीं होता, अन्तर्मन में स्थित है, ऐसा हमारा मन शुभ संकल्पों वाला बने।'' (वही 6) बार-बार शिव संकल्प का दोहराव मन का प्रशिक्षण है। कुशल ड्राइवर वाहन को नियन्त्रित रखता है। निश्चित लक्ष्य तक ले जाता है। अप्रशिक्षित ड्राइवर दुर्घटना करता है। अप्रशिक्षित मन इससे भी ज्यादा खतरनाक है। वह अत्यन्त पराक्रमी और तीव्र गतिशील है। इसीलिए उसके संस्कार की आवश्यकता है। यहाँ इसी संस्कार की प्रीतिपूर्ण विनम्र स्तुति है। इस

स्तुति का लक्ष्य निजी हित नहीं 'शिवसंकल्प' है। शिव और लोकमंगल पर्याय हैं। लोकमंगल से जुड़ा मन ही 'शिवसंकल्प' है।

यजुर्वेद मन मधुवन के मधुरस और मधुगंध से भरा पूरा है। एक सुन्दर मंत्र आहुतियों पर है, कहते हैं ''यह स्वाहा (ह्वि) समुद्र तक जाए, यह स्वाहा अन्तरिक्ष जाए, यह स्वाहा सविता तक जाए, यह मित्र वरुण को जाए। यह स्वाहा वैश्वानर अग्नि, रात्रि दिन सोम आदि को जाए। हे देवों हमारा मन शुभ करो – स्वाहा, मनो मे हार्दि यच्छ।'' (6.21) मन का शुभत्व ही यहाँ मुख्य लक्ष्य है। जलों से स्तुति है – ''मनो में तर्प्पयत, वाचं में तर्प्पयत, प्राणं में तर्प्पयत् – हे जल! हमारे मन को तृप्ति दो, वणी को तृप्ति दो, प्राण को तृप्ति दो, आँख, कान को भी तृप्ति दो।'' (6.31) यहाँ भी मन पहला है। मन ही तृप्त होता है, मन ही अतृप्त। मन ही आशा, निराशा और अभिलाषा का केन्द्र है। मनोनुकूल प्रसन्नता है, इसकी प्रतिकूलता दुःख है। सारी इच्छाएँ मनोकामना हैं। परमतत्त्व मनमुक्त नहीं था शायद। वह एक था। अकेला था। उसके मन में एक से अधिक होने की इच्छा हुई। वह प्रकट हुआ रूपों में। मन ही बंधन है, मन ही मुक्ति का द्वार। मन मधुवन की अन्तर्यात्रा सुखदायी है। मन दर्शन का आनंद लहालोट करने वाला है।

डॉ. कृष्णदत्त ने मन लगाकर मन का अध्ययन किया। पूरे मन से यह पुस्तक लिखी। इसका वाचन, पाठन मनोरंजक तो है ही, मनबोधक भी है। मैं पुस्तक के उपयोगी होने के सन्दर्भ में निश्चिन्त हूँ एवं अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ।

हृदयनारायण दीक्षित
(सम्प्रति विधान-सभा अध्यक्ष
उ0 प्र0 सरकार)

ओम् यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म। (यजुर्वेद)
जो आदित्य सृष्टि में पुरुष ईश्वर है, वही मैं हूँ, ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है।

विनम्र निवेदन

जीवन मनोविज्ञान के रहस्यों को समुद्घाटित करते हमारे अभिवन्दनीय डा. कृष्णदत्त जी के लेखों का संकलन हमारे समक्ष है। यद्यपि ये सभी लेख पत्रिका में पूर्व प्रकाशित हैं, परन्तु पुस्तक स्वरूप में उनकी उपादेयता स्वभावतः अधिक होगी। मानव मन बहुत जटिल माना जाता है तथा वर्तमान जटिलतर समाज में वह और भी दुर्बोध बन गया है। व्यक्ति जो कुछ कहता है, उसके पीछे उसका आशय नितान्त भिन्न, बहुधा विपरीत होता है। ऐसे मन को समझना तथा सुबोध भाषा में जन-सामान्य को समझा देना वास्तव में आप जैसे अनुभवी विशेषज्ञ के लिए ही शक्य है।

स्वामी शरण
चतुर्वेद सरल पाठ सम्पादक
एवं भाष्यकार

शुभ कामना

वरिष्ठ चिकित्सा मनोवैज्ञानिक डॉ. कृष्ण दत्त जी के जीवन मनोविज्ञान सम्बन्धी लेखों का संकलन प्रकाशित हो रहा है, यह हम सभी के लिए प्रसन्नता का विषय है। उन्होंने क्रोध, चिन्ता, मोह जैसे मनोभावों के साथ ही सामाजिक व्यवहार, संवाद कौशल जैसे व्यवहारिक विषयों पर भी उपयोगी मार्गदर्शन दिया है।

हमारे लिए यह विशेष प्रसन्नता की बात है कि उनके ये लेख हमारी लघु पत्रिका सम्पूर्ण स्वास्थ्य में नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। इस प्रकार पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो जाने से लोग लम्बे समय तक इन लेखों से मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन प्राप्त कर सकेंगे। पत्रिका के प्रकाशन में भी आपका महत्वपूर्ण सहयोग है। अत्यन्त व्यस्तता में भी समय निकालकर हमारे पत्रिका के स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन, प्रोत्साहन सहित विविध सहयोग नियमित रूप से देते रहे हैं। आशा है, आपके मार्गदर्शन में पत्रिका तथा उसमें आपके मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन का प्रकाशन इसी प्रकार होता रहेगा। पुस्तक के प्रकाशन तथा सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ. उमेश पालीवाल
एम. डी. (पैथालाजी)
निदेशक : पालीवाल डायग्नोस्टिक्स एवं
मेडिकेयर प्रा. लि.

दो शब्द

मेरे मित्रगण एक अर्से से मुझसे कहते आ रहे थे कि मैं कुछ लिखूँ। संयोगतः स्वामी शरण जी से मेरे अनुज डॉ. उमेश पालीवाल ने भेंट करायी और बताया कि एक ''सम्पूर्ण स्वास्थ्य'' नाम की पत्रिका प्रकाशित होने जा रही है; जिसके मुख्य कर्ता-धर्ता स्वामी शरण जी ही होंगे। वैसे तो मैं स्वामी शरण जी से पूर्व परिचित था, किन्तु एक लम्बे अन्तराल के बाद मुझे वे दूसरे रूप में मिले और वो रूप था वैदिक वाङ्घ्मय के प्रति एक सम्पूर्ण समर्पित व्यक्तित्व जिससे प्रभावित हुए बिना मैं न रह सका। अगर सच कहें तो उन्हीं का आग्रह था कि प्रतिमाह वो मुझसे एक लेख लिखवा लिया करते थे, जोकि ''सम्पूर्ण स्वास्थ्य'' में 'जीवन-मनोविज्ञान' नाम के स्थायी स्तम्भ में छप रहा था और उन्हीं की शुभेच्छा से उसमें छपे लेखों को संग्रहीत कर एक पुस्तकाकार रूप दे दिया गया है। सचमुच इस प्रयास के पीछे उनकी एवं उनकी टीम की अदम्य ऊर्जा का ही योगदान है। मैं ऐसा कोई दावा नहीं करता कि इन लेखों में कोई मौलिक जानकारी दी गयी है। वस्तुतः प्रयोजन यह रहा है कि विगत तीन दशक से भी ज्यादा अपने मनोवैज्ञानिक जीवन-काल में जो अनुभूतियाँ रही हैं उनको मैं आप सबसे बाँट सकूं। सम्भव है कि आपके व्यावहारिक जीवन में वे आपके कुछ काम आयें।

भाषा बिल्कुल बोलचाल की रखी गयी है, जिससे पाठकगण किसी प्रकार की गरिष्ठता का अनुभव न करें। जो भी बन पड़ा है

उसका श्रेय पालीवाल डायग्नोस्टिक्स एवं मेडिकेयर प्राइवेट लिमिटेड अर्थात् डॉ. उमेश पालीवाल व डॉ. (श्रीमती) मृदुला पालीवाल तथा वैदिक शोध संस्थान अर्थात् श्री स्वामी शरण जी व उनकी टीम को जाता है। तथ्य एवं कथ्य सम्बन्धी त्रुटियाँ मेरी अपनी निजी हैं; कहना चाहिए वे मेरे मानस की दिशा-दशा को दर्शाती हैं।

बस इन्हीं शब्दों के साथ ....

आप सबका शुभेच्छु
कृष्णदत्त

अनुक्रमणिका

1.	मन तथा उसका स्वरूप	19
2.	मानव मन का वैज्ञानिक विवेचन	23
3.	मनः एक विवेचन एवं आत्म सुझाव	27
4.	मांशपेशीय तनाव मुक्तता एवं मनः शान्ति	30
5.	मन स्वयं को भुलावे में रखता है	33
6.	अवचेतन मन की शक्ति	35
7.	मन - संयम ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ	38
8.	मानसिक स्वच्छता	40
9.	मानसिक स्वास्थ्य के तीन प्रमुख अंग	43
10.	मन स्वस्थ तो तन स्वस्थ	47
11.	हम स्वप्न क्यों देखते हैं?	51
12.	हम प्रतिक्रिया क्यों करते हैं?	55
13.	हम झूठ क्यों बोलते हैं?	58
14.	क्या झूठ पकड़ से बाहर होता जा रहा है?	61
15.	क्रोध क्यों होता है?	64
16.	ईर्ष्या कहाँ से उपजती है?	66
17.	दुश्चिंता और इससे बचाव	69
18.	जीवन में अवसाद (उदासी) का महत्व	73
19.	आत्महत्या क्यों करते हैं लोग?	76

20.	जीवन एवम् नशा	80
21.	सम्बन्धों का मनोविज्ञान	83
22.	सम्बन्धों को कैसे सँवारें?	86
23.	सत्य पर सामाजिक परम्परा सदैव भारी	88
24.	सामाजिक संस्थाओं के संजाल में फँसा आदमी	90
25.	व्यक्ति विकास में सामाजिक संस्थाएँ कहाँ तक सहयोगी हैं?	92
26.	अवांछित संस्कारों से कैसे उबरें?	95
27.	रेचन या स्वत: स्फूर्त निष्कासन	97
28.	स्वतन्त्रता : एक मनोवैज्ञानिक संप्रत्यय	100
29.	अच्छे नागरिक कैसे बनें?	102
30.	असामान्यता क्या है?	105
31.	जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि	109
32.	संवादहीनता : एक समस्या	112
33.	संवाद- कौशल	116
34.	वाणी : एक अमोघ अस्त्र!	120
35.	बच्चों का मनोवैज्ञानिक आकलन	123
36.	बच्चे आपकी जागीर नहीं है!	126
37.	व्यक्तित्व : एक खोज	128
38.	अहम् सुरक्षा तकनीक	131
39.	समय प्रबन्धन	134
40.	जीवन में तनाव : कारण एवं निवारण	136
41.	समस्या समाधान	138
42.	संसार में समायोजन का मनोविज्ञान	140
43.	बुद्धि ही नहीं, भावना भी महत्वपूर्ण	142
44.	जीवन में त्याग नहीं विवेकपूर्ण चयन जरूरी है!	146
45.	चेतना का विस्तार ही जीवन है!	148
46.	कामवासना	150
47.	सुखी दाम्पत्य जीवन का राज	153
48.	प्रेम : जीवन ऊर्जा का प्राण तत्त्व	155
49.	गुरु : वैज्ञानिक अवधारणा	158
50.	मनोवैज्ञानिक परामर्श दाता के शीलगुण	160
51.	सलाह (परामर्श) के आधारभूत कारक	164

1.

मन तथा उसका स्वरूप

मन क्या है? मन एक अबूझ पहेली है। इसे परिभाषित करना कठिन है, इसे अप्रत्यक्ष रूप से ही समझा जा सकता है। जाने अनजाने यह ही हमारा संचालक, संवाहक और निर्देशक है।

वैसे मन के अनुरूप चलो तो मनमानी और अगर इस पर बुद्धि और विवेक का अंकुश लगा दो तो यह बुद्धिमानी हो जाता है।

मन को इसके कार्य कलापों के आधार पर समझा जा सकता है। मन की चाहत विचित्र होती है। कई बार विरोधी इच्छाएँ ही इसकी चाहत होती है। अत: तार्किकता के आधार पर मन का स्वरूप नहीं समझा जा सकता है।

मन के स्वरूप में मात्र एक ही बात सुस्पष्ट होती है कि यह शान्त कभी नहीं होता अर्थात् सतत् विचार शृंखला ही इसका पर्याय है। प्रकट रूप में विचारों के झंझावात/उधेड़बुन ही मन का स्वरूप है। मन के कुछ विशेष शीलगुण होते हैं।

1. यह एक बेहद सूक्ष्म पदार्थ है।

2. गतिमान रहना इसका प्रधान गुण है।

3. यह स्वयं में अस्पष्ट है।

4. प्रतिक्षण बदलना इसका स्वभाव है। (क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति)

5. अगर बुद्धि या विवेक का अंकुश न हो तो यह बिना लगाम के घोड़े की भाँति चौकड़ी भरता है।

6. यदि बुद्धि इस पर नियन्त्रण खो देती है तो यह अति प्रभावशाली बनकर बुद्धि को अपनी सहायिका बना लेता है अर्थात् तब बुद्धि कई बार मनमानी करने के अत्यन्त अकाट्य तर्क देती है।

7. मन हमारे अहं (Ego) का जनक होता है।

8. असन्तुष्टि इसका प्रधान गुण है। सारा संसार भी इसकी तुष्टि के लिए कम होता है।

मन का अर्थ सम्भवत: मनमानी के सन्दर्भ में ही लिया जाता है। प्राय: लोग इसको निषेधात्मक रूप में ही देखते हैं। मन निरा निरर्थक और अनावश्यक नहीं है। संसार में रहने व समायोजन हेतु इसकी अपरिहार्यता है। यह संसार व चेतना के मध्य सेतु का काम करता है।

मन का संसार के साथ तादात्मीकरण करना माया है, कहना चाहिए कि मानव मन माया है। अगर मन जागरूक हो जाये तो मन बुद्ध ही है।

हमारे मन-बुद्धि-चित्त सहित समस्त भावनात्मक विकास का आधार हमारे विचार होते हैं। विचार प्रवाह ही जीवन और विचार प्रवाह का विघटन ही मृत्यु है। मन को वस्तुत: एक अबोध बालक के रूप में देखा जा सकता है। निरंकुश किन्तु निष्कलुष। अगर हम इसे छूट दे देते हैं तो यह मनमौजी और जिद्दी हो जाता है और अगर उचित-अनुचित का विवेचन साथ साथ रहता है तो फिर यह समझदार बच्चे की तरह शिष्ट एवं संयमी हो जायेगा। मन का यह अभिभावक तत्व ही आत्म-तत्त्व है।

सारांशत: मन तो संयम चाहता ही नहीं है परन्तु मन को उच्छृंखल और उद्दण्ड बनने से रोकने के लिए संयम आवश्यक है।

सुनियोजित ढंग से इसे प्रशिक्षित करें, जिस प्रकार बालक को करते हैं, अथवा बाँध बनाकर जैसे बरसात की उफनाई नदी को संयमित कर सिंचाई के लिए उपयोगी नहर बनाते हैं। मन को भी विभिन्न प्रकार से रोक कर, दिशा देकर हम इसे अपने जीवन के लिए एक उपयोगी उपकरण बना सकते हैं।

इसके चञ्चल स्वरूप के बारे में सजग रहें। इसकी आदतों के बारे में सावधान रहें। कालान्तर में यह आदतों का ही गुलाम हो जाता है। इसकी दिशा और सीमाओं के विषय में सजग रहें। प्रयत्न करके आत्म-सत्ता (Self) को सजग रखें। सजगता, संवेदनशीलता के साथ ही आती है।

मन को नियन्त्रित करने की विधि यही है कि विचारों का निरीक्षण करने की आदत डालनी चाहिए।

मन के पाँच अनुचर हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं, जिनके माध्यम से प्रकाशित होकर यह अपना पोषण करता है। इसकी विशिष्टता यह है कि इन्द्रियजनित विषय के न उपलब्ध होने पर भी, वैचारिक रूप से यह पूरी तरह स्वयं को उसमें निमग्न रखता है और तदनुकूल ही अपना विषयभोग का ध्येय पूरा कर लेता है। मन को संयमित करने के लिए निम्नलिखित क्रियाएं करें -

1. विचारों का प्रेक्षण जारी रखें और सातत्य बनाये रखें।
2. प्रेक्षण करने में पूर्व धारणा, पूर्वानुभवों व किसी भी प्रकार की शास्त्रीय या दार्शनिक व्याख्या से बचें।
3. ठीक से देख लेना ही, उस समस्या से शनैः शनैः मुक्त हो जाना है।
4. अनानुबंधन अर्थात् पूर्व बन्धनों से सदा मुक्त रहें।

उपसंहार के तौर पर कह सकते हैं कि मन हमारा स्वामी जान पड़ता है किन्तु है नहीं। जरा सा चूके कि मन अपने पक्ष के अनुकूल तरह-तरह के तर्क-वितर्क गढ़कर अपने को सही साबित कर देता है। इस सन्दर्भ में दुर्योधन का वक्तव्य दृष्टव्य है -

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
कस्यापि देवेन हृदस्थितेन
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।।

देखिये किस चतुराई से अपने कार्यों के लिए भी परमसत्ता को उत्तरदायी सिद्ध कर दिया। अतैव सदा सजग रहकर ही मन के विविध प्रपंचों से निस्तार सम्भव हो पाता है।

♦ ♦

❖ ''मुझे कदम-कदम पर चौराहे मिलते हैं बाहें फैलाए,
एक पैर रखता हूँ कि सौ राहें फूटती हैं और
मैं उन सब पर से गुजरना चाहता हूँ ।
....
....
....
इस तरह खुद ही को लिये-दिये फिरता हूँ,
अजीब है ये जिन्दगी ।''

-मुक्तिबोध

❖ ग्रन्थ पन्थ सब जगत के बात बतावें तीन ।
राम हृदय मन में दया, तन सेवा में लीन ।।

-कबीर

❖ "Men are disturbed not by the things,
But by the views they take of them."

- Epictetus

(लोग परिस्थितियों से परेशान नहीं हैं, बल्कि उनके बारे में अपने चिन्तन से दुःखी हैं।)

2.

मानव मन का वैज्ञानिक विवेचन

मानव मन संम्भवत: अपनी जटिलता के कारण ही सर्वसाधारण मनुष्यों के ही नही वरन् वैज्ञानिकों के भी आकर्षण का केन्द्र रहा है।

आधुनिक चिकित्सा मनोविज्ञान के प्रणेता पाश्चात्य वैज्ञानिक सिग्मण्ड फ्रायड के अनुसार मन को दो तरह से विभाजित कर सकते हैं। पहला विभाजन निम्नवत् है –

1. **चेतन मन**– ये मन का वह भाग है जिसके बारे में हम जागरूक होते हैं और इसी के आधार पर हमें देश, काल एवं परिस्थिति का ज्ञान होता है। जागरण की अवस्था में किया गया हमारा अधिकांश व्यवहार इसी के आधार पर निर्देशित होता है। हमारे होश में होने का यह प्रमाण है।
2. **अर्धचेतन मन**– मन का वो भाग जिसके बारे में हम कुछ–कुछ जान रहे होते हैं जैसै– कभी–कभी हमें अचानक बहुत गुस्सा आ जाता है छोटी–सी बात पर। अब अगर थोड़ा ठहर कर हम सोंचें तो पता चल जाता है कि पूर्व में हुयी किसी घटना के कारण पहले से ही मन खराब था। अत: उदघ्दीपन के आते ही बड़ी प्रतिक्रिया हो गयी। अर्थात् हम पूर्ण चेतन तो नहीं थे तभी मुझसे अतार्किक व्यवहार हुआ। इस स्थिति को मध्य की मनोदशा के रूप में लिया जा सकता है।

3. **अवचेतन मन**– मन का विशाल भाग अचेतन या अवचेतन है। स्वप्नों की दुनियाँ इसी अवचेतन मन की देन है। सागर में पड़े हिमखण्ड का बड़ा हिस्सा जो जल के अन्दर होता है उसकी तुलना अवचेतन से की गयी है और बहुत छोटा हिस्सा जो जल राशि के ऊपर दिखायी देता है उसकी तुलना चेतन मन से। साँख्यकीय भाषा में कहें तो दस में से लगभग आठ भाग अवचेतन जबकि मात्र दो भाग चेतन मन है। ध्यान रहे जागृत अवस्था में भी कई व्यवहार हमारे न चाहते हुए भी हो जाते हैं। उन सब के पीछे अवचेतन मन का हाथ होता है। स्पष्ट है हम जितने अधिक जागरूक (Aware) होते हैं चेतन का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता है। एक बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ व्यक्ति ही पूर्ण चेतन है।

मन का दूसरा विभाजन उसके गत्यात्मक स्वरूप को ध्यान में रखकर किया गया है –

1. इदम् (Id)– यह मन का वह पक्ष है जो हर प्राणी में होता है। इसे भौतिक पक्ष कह सकते हैं। इस तल पर जीवन संचालन के लिए मूलभूत (जन्मजात) प्रवृत्तियों का प्रभाव रहता है। अर्थात् व्यक्ति सुख के सिद्धान्तानुसार त्वरित गति करता है यथा – भूख, प्यास लगने पर। इस तल पर यह विचार नहीं आता कि अमुक व्यवहार करने पर उसका परिणाम क्या होगा! सभी जानवर, बच्चे या मन्दबुद्धि लोग प्राय: इसी तल पर रहते हैं अर्थात् शारीरिक आवश्यकता के अनुसार ही व्यवहार करते हैं।

2. अहम् (Ego)– यह दूसरा तल है जिसे मनोवैज्ञानिक पहलू कह सकते हैं। मन का यह पक्ष किसी भी व्यवहार के परिणाम को भी ध्यान में रखता है। अर्थात् वह इदम् (Id) की इच्छाओं को रोकता है और उचित समय आने पर ही उनकी पूर्ति की इजाजत देता है। यह आत्म सुरक्षा का विशेष ख्याल रखता है। इदम् (Id) की तरह अतार्किक न होकर यहा तार्किकता के आधार पर कार्य करता है। यहां

यह ध्यान देने योग्य है कि अगर इसे सुरक्षा व्यवस्था उपलब्ध हो तो इदम् (Id) की इच्छाओं की पूर्ति हेतु यह खुली छूट दे देता है। अर्थात् यह मन का सबसे चालाक पहलू है। मन का प्रशासन मुख्यतया इसी के हाथ में होता है। आध्यात्मिक जगत् में जिस अहम् (Ego) की भर्त्सना की जाती है वो शायद इसी चालाकी या स्वार्थपरता की वजह से होती है। किन्तु यह भी स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि अगर अहम् (Ego) अतिक्षीण हो तो व्यावहारिक जीवन में हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है।

3. परम् अहम् (Super Ego) – यह मन का सामाजिक पहलू है जो कि समाज के नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए हमारे व्यवहार को निर्देशित करता है। ध्यान रहे एक मायने में यह इदम् (Id) से मिलता-जुलता है, क्योंकि तार्किकता का अभाव यहाँ भी होता है और एक अर्थ में अहम् (Ego) से समानता है क्योंकि इदम् (Id) की इच्छापूर्ति को सामाजिक नीति-नियम (मान्यताओं) के अनुसार ही अनुमति प्रदान करता है। हम सबको थोड़ा अटपटा लगेगा कि परम् अहम् (Super Ego) अतार्किक है और उसका कारण यह है कि सामाजिक मान्यता के अनुसार अच्छा-बुरा एवं पाप-पुण्य की धारणाएँ हम पर सदा दबाव बनाये रखती हैं।

आइये इन तीनों की कार्यशैली को एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं –

"एक यात्रा में तीन दोस्त निकल पड़े। लम्बी यात्रा की वजह से रास्ते में भूख लगी। थकान एवं शारीरिक कमजोरी के चलते और चला नहीं जा रहा था। एक अजीब सी दुकान दिखती है जो मानव रहित है किन्तु सुस्वादु पकवान रखे हुए है। एक दोस्त ने कहा तुरन्त खाना चाहिए। दूसरा बोला देख लो कहीं ऐसा न हो कि खाना और भी भारी पड़े, मसलन खाने में जहर हो या फिर मालिक अचानक आकर पिटाई कर दे। किन्तु थोड़ी देर में सुरक्षा व्यवस्था से सन्तुष्ट होकर उसने भी अनुमति दे दी। अब तीसरा बोला बिना इसका भुगतान

किये मुफ्त में मैं तो नहीं खाऊंगा।" इस वर्णन में तीनों मित्र क्रमिक रूप से इदम् (Id), अहम् (Ego) और परम् अहम् (Super Ego) का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सारांशत: इन तीनों पहलुओं (इदम्, अहम्, परम् अहम्) में सामंजस्य होना चाहिए तभी स्वस्थ सामाजिक जीवन सम्भव है। अगर इदम् का दबाव अधिक होगा तो हम सब भी जानवरों जैसा व्यवहार करेंगे। अहम् का प्रभुत्व बढ़ जाने पर समाज में सफेद पोश लोगों (दिखावा पसन्द एवं स्वार्थी) में गिनती होगी और परम् अहम् का अत्यधिक प्रभाव होने पर पग-पग पर जीवन कठिन हो जायेगा तथा हम सदैव पाप-पुण्य व अच्छा-बुरा के फेर में मन की स्वस्थता को ही खो देंगे।

अर्थात् मध्यमार्ग ही सुगम है, वही सरल, सहज एवं वरेण्य है।

♦ ♦

❖ "The whole world is crazy except me & thee and some-times I doubt about thee."

(सारा संसार सनकी है सिवा मेरे व तुम्हारे और कभी-कभी मुझे तुम पर भी सन्देह होता है।)

❖

❖ ''समझदार मैं एक हूँ बाकी सब नादान ।
इसी भ्रम में डोल रहा आज का ए इंसान ।।''

3.

मन : एक विवेचन एवं आत्म सुझाव !

मन का स्वभाव है 'चंचलता'। अगर आप चंचलता रोकने हेतु सीधा प्रयास करेंगे तो सम्भव नहीं होगा। मन की प्रवृत्ति से सीधा नहीं लड़ा जा सकता है। ऐसा करने से आपकी की ही हार होगी। वस्तुतः मन की प्रवृत्तियों से हम दो तरह से उलझते हैं। एक तो हम उसके बारे में आगे-आगे (भविष्य की कल्पनाएँ) सोचना शुरू कर देते हैं और दूसरा यह है कभी-कभी उसका हम विरोध करने लगते हैं यथा "ऐसा नहीं सोंचना है"। इन दोनों दशाओं में ही हम उसको शक्ति प्रदान कर रहे होते हैं, फलतः वह प्रवृति मजबूत होती रहती है। दरअसल करना यह है कि मन के अन्दर आते-जाते विचारों को देखना है अर्थात् विचारों को आने दे जाने दें, ना कि उनमें उलझें।

अपने को सुझाव इस प्रकार दें, "यह आपका मन है तो आपके ही नियन्त्रण में होना चाहिए। आपसे मन है न कि मन से आप"। न चाहते हुये भी हम मन के दबाव में आ जाते हैं। अगर मन में चल रहे उपद्रव को दृष्टा भाव में अर्थात् एक मूक दर्शक की भांति देखना प्रारम्भ कर दें तो कुछ दिनों के अभ्यास के बाद ऐसी स्थिति आ जाती है कि ज्यों ही मन में हलचल शुरू होती है आपके संज्ञान में आने लगता है और प्रेक्षण मात्र से वह प्रवृत्ति कमजोर पड़ने लगती है। तथ्यात्मक बात यह है कि एक ही समय में दो प्रवृत्तियाँ कैसे ठहर सकती हैं क्योंकि मन में ही एक भाव चल रहा है और दूसरा उसे

देखने का भाव। ऐसा करने मात्र से ही तार्किक रूप से पहले विचार-भाव की तीक्ष्णता कम होने लगती है।

बाहय्य जगत् की कोई भी घटना आप पर प्रभाव नहीं डाल सकती अगर आप स्वयं ऐसा होने न दें। वस्तुतः जब हमारा मन किसी विषय-वस्तु के प्रति कमजोर होता है तभी हम पर प्रभाव पड़ता है। सारांशतः हमारे ऊपर किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति का प्रभाव नहीं पड़ता वरन् इस सब के बारे में हमारा चिन्तन ही हमको प्रभावित करता है और हम अपने चिन्तन को उपर्युक्त बताई गयी प्रेक्षण (देखना) पद्धति से एक हद तक नियन्त्रित कर सकते हैं। बस इतना ही करने की आवश्यकता है क्योंकि चिन्तन तो लगातार मन में चलता ही रहता है उससे हम अनचाहे ढंग से प्रभावित न हों ऐसी स्थिति बन जानी चाहिए।

एक उदाहरण दृष्टव्य है और वह है जल में उठी तरंगों (लहरों का)। जिस तरह जल-राशि में उठी छोटी सी लहर पूरी जल-राशि को एक हद तक आप्लावित कर लेती है ठीक उसी तरह मन में उठा एक विचार हमारे मन को एक हद तक अपने प्रभाव में ले लेता है। और हाँ एक बार उठी तरंग (लहर) को रोकना असम्भव है क्योंकि ज्यों ही लहर को रोकने का प्रयास करेंगे पानी को विलोड़ित कर आप नयी लहर उत्पन्न कर देंगे। बस ऐसी ही स्थिति मन में उठे विचारों की है अर्थात् विचारों को रोकने के प्रयास में उसकी अनन्त श्रृंखला निर्मित होने लगती है और आप असहाय हो जाते हैं। तरीका बस वही है कि आप शान्त होकर मात्र देखने लग जाँय तो आप पाते हैं कि जैसे जल में उठी तरंगें अपना अस्तित्व खो देती हैं वैसे ही मन में उठे विचार-भाव भी शान्त होने लगते हैं। ध्यान रहे कि यह एक अनवरत क्रिया है और सतत् अभ्यास की आवश्यकता है। इतना अवश्य है कि कुछ दिनों में खेल भावना आ जाती है और आप मन की हलचल के प्रति सजग होने लगते हैं।

अन्ततः समय-समय पर अपने को सुझाव देते रहें :-

"आप एक पूर्ण चेतन ब्रह्म के अंश हैं। बाह्य शक्ति आपको स्पर्श भी नहीं कर सकती। आप शुद्ध, पूर्ण एवं शान्ति स्वरूप आत्मा हैं। जगत्-प्रपंच मन की लीला है अतः खेल-भावना से जीवन जीना है और सांसारिक अभिनय पूर्ण शिद्दत किन्तु अलिप्त भाव से करना है"।

♦ ♦

- ❖ चित्र ही प्रवत्त होता है, चित्त ही विमुक्त होता है, चित्त ही जन्मता है एवं चित्त ही अस्त होता है। अतः संसार चित्त की लीलाओं का क्रीड़ास्थल है।
- ❖ बुद्धि केवल जीवन का एक उपकरण है, उपादेय है सीमाओं में, मर्यादाओं में । जीवन बड़ा है; विराट है ।
  – **गाँधी जी**
- ❖ कदली, सीप, भुजंग-मुख; स्वाति एक गुण तीन ।
  जैसी संगति कीजिए, तैसो ही फल दीन ।
- ❖ जीवन में संशय कम्प्यूटर में वायरस की तरह होता है।
- ❖ केवल वही नित्यता को प्राप्त होते हैं जो संसार में नित्यता को खोज लेते हैं।
  – **खलील जिब्रान**
- ❖ कानून एक ऐसा मकड़जाल है, जिसमें छोटी मक्खियाँ फँस जाती हैं एवं बड़ी बच कर निकल जाती हैं।

❖❖ ❖ ❖❖

4.
मांशपेशीय तनाव मुक्तता एवं मनः शान्ति

जब हम किसी भी वजह से तनाव ग्रस्त होते हैं तो हम पर सबसे पहला प्रभाव यह पड़ता है कि हमारा शरीर तनाव में आ जाता है फलस्वरूप शरीर की मांशपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। और दूसरा प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है परिणामतः हमारी श्वास क्रिया अनियमित (अनियंत्रित) हो जाती है। तो इस प्रकार स्पष्ट है कि तनाव से मुक्ति हेतु पहले मांशपेशियों को शिथिल करना होता है और धीमी गहरी श्वास क्रिया से मन को शान्त करते हैं। आइए देखें शिथिलीकरण की क्रिया कैसे की जाती है :-

सर्वप्रथम बदन में ढ़ीले कपड़े पहनकर शवासन की मुद्रा में लेट जायें। ध्यान रहे बिस्तर लचीला नहीं होना चाहिए अर्थात् बिस्तर कड़ा हो एवं तकिया का प्रयोग भी न करें।

वस्तुतः कड़े बिस्तर पर बिना तकिया के लेटना वैसे भी चिकित्सा विज्ञान में स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से ठीक माना जाता है।

यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है। अतः सबसे पहले शरीर को शिथिल करना आवश्यक है। अब प्रक्रिया प्रारम्भ हो रही है-

मन को धीरे-धीरे शरीर की ओर लायें और शरीर के सभी हिस्सों को नीचे की ओर तनाव देते हुए कड़ा करें। इस स्थिति में लगभग दो-तीन सेकण्ड ठहरें फिर बदन के सभी हिस्सों को ढीला छोड़ दें। अबकी बार लगभग 5-7 सेकण्ड ठहरें। इस क्रिया को चार

बार दोहरायें। तत्पश्चात् शरीर के सभी अंगों को ऊपर की ओर तनाव में ले जाते हुए कड़ा करें और फिर ढीला छोड़ दें। इसकी भी चार आवृत्तियां उसी तरह दोहरायें। अब एक बात यह समझने की है कि जब इसका पूरा अभ्यास बन जाये तो शरीर के विभिन्न अंगों को अलग-अलग करते हुए इस क्रिया को दोहराया जा सकता है। आइये प्रक्रिया का पूरा विस्तार जानते हैं- ''सबसे पहले पैरों पर ध्यान को ले जाते हैं और ऊपर बतायी गयी प्रक्रिया सिर्फ पैरों के साथ करते हैं। फिर इसी तरह क्रमिक रूप से शरीर के ऊपरी हिस्सों की ओर बढ़ते जाते हैं- शरीर के पाँच बड़े हिस्से किये गये हैं- पैर, धड़, हांथ, गर्दन एवं चेहरा। इन सभी पांचों अंगों पर दो बार ऊपर की तरफ कड़ा एवं ढीला करने की प्रक्रिया को दुहराते हैं। गर्दन इसमें अपवाद है, क्योंकि इसकी चार स्थितियां हैं- नीचे, ऊपर एवं दायें, बांये।''

दरअसल अगर किसी को अधिक घबराहट रहती हो तो पहले पूरे शरीर वाली क्रिया का अभ्यास करें तदनन्तर विभिन्न पांचों अंगों का। वैसी पूरी क्रिया करने का तरीका यह है कि पहले विभिन्न अंगों पर क्रिया कर लें और तत् पश्चात् पूरे शरीर की।

एक बात और जब इस क्रिया को करें तो पहले कुछ शारीरिक व्यायाम (जागिंग वगैरह) करके फिर इसे करें। सामान्यतया इसे तीन बार किया जा सकता है- सुबह, सायं एवं रात्रि में सोने से पूर्व। प्रायः सुविधा जनक तरीका यह पाया गया है कि सुबह और सायं पूरी प्रक्रिया विस्तार से करें और सोते वक्त सिर्फ पूरे शरीर वाली क्रिया दुहरा कर सो जायें। अन्ततः इस मांशपेशीय तनाव मुक्तता के पश्चात् अगर थोड़ी देर धीमी गहरी स्वांश का अभ्यास अमल में लाया जाय तो अतिरिक्त लाभ होता है और शरीर के साथ-साथ हमारा मन भी तनाव मुक्त हो जाता है।

एक बात जो अकाट्य है वो यह है कि व्यक्ति के अन्दर अपरिमित क्षमता विद्यमान है बस उसे अन्तर्मुख होने की जरूरत है। बाकी काम अस्तित्व स्वयं करा देता है।

नियमित अभ्यास अपने-आप आन्तरिक विकास के सोपान खोल देता है। शरीर और मन दोनों शान्त होंगे तभी तो हमारा मनोशारीरिक यन्त्र स्वस्थ रहेगा। और इसके लिए कुछ विशेष करने की आवश्यकता नहीं है। मात्र सुबह-शाम कुछ समय (लगभग आधा घण्टा) निकालकर उपर्युक्त क्रिया को करना है। विशेष व्यस्तता होने पर सिर्फ सुबह करें और रात को सोने के पूर्व संक्षेप में क्रिया दुहरा लें। अर्थात् पूरे शरीर वाली क्रिया मात्र कर लें। सोने के पूर्व धीमी-गहरी श्वांस (Diafragmatic Breathing) अर्थात् पेट से स्वाभाविक श्वांस लेते हुए मन की गतिविधि पर नजर रखने का अभ्यास प्रारम्भ करें। जीवन में शुभत्व स्वयं उतरने लगेगा।

♦ ♦

❖ तिमिर गया रवि देखते,
कुमति गयी गुरु ज्ञान।
सुमति गयी अति लोभ ते,
भक्ति गयी अभिमान।।

-कबीर

❖ सब धरती कागज करूँ, लेखन सब वनराय।
सात समन्दर मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाये।

-कबीर

❖ समन्दर न उलीच पाओगे सीप से।
तुम बस देखते रह जाओगे, जिन्दगी निकल जायेगी सीप से।

5.

मन स्वयं को भुलावे में रखता है !

मन अजीब यन्त्र है और इसका तन्त्र गजब का है। बुद्धि इसकी चेरी है अर्थात् जितना बुद्धिमान व्यक्ति उतनी ही चतुराई से अपनी छद्म सन्तुष्टि के उपाय खोज लेगा। मन को मजा आता है शायद यह सब करने में। इसी को माया-जाल, संसार या फिर दुनियादारी कहते हैं। दरअसल मन ही माया है।

आइए इसके कौतुक को देखते हैं। मसलन अगर मन कुछ तय कर लेता है तो फिर बुद्धि उपाय खोजती है उसे उचित ठहराने के लिए-

''मन जब निश्चित सा कर लेता कोई मत है अपना।
बुद्धि दैव बल से प्रमाण का सतत निरखता सपना।।''

- जयशंकर प्रसाद (कामायनी)

किन्तु जब व्यक्ति दूसरे को बताता है तो पहले वजह समझाते हुए उल्टा प्रस्तुतीकरण करता है

''बन जाता सिद्धान्त प्रथम फिर पुष्टि हुआ करती है।
बुद्धि उसी ऋण को सबसे ले सदा भरा करती है।।''

- जयशंकर प्रसाद (कामायनी)

अर्थात् कार्यप्रणाली प्रस्तुतीकरण के बिल्कुल उलट है। तभी तो कहा जाता है स्वयं अपने मन से व्यक्ति को सजग रहने की जरूरत है। वस्तुतः स्वयं के अस्तित्व को सँभालने के लिए एक हद तक मन

का यह दायित्व भी है। अन्यथा हम अवसाद (उदासी) के गर्त में चले जायेंगे। लेकिन यदि हम सचेष्ट नहीं हुए तो तरह-तरह के छद्म आवरण से आवृत्त कर मन हमारे समूचे व्यक्तित्व को आच्छादित कर लेता है और हम पूरी तरह से नकली जीवन जीने के आदी हो जाते हैं।

विवेकीजनों ने अपने अनुभवों के आधार पर कुछ संकेत भर दिये हैं क्योंकि जागृत होने की यात्रा शब्दातीत है।

अन्ततः कुछ उदाहरण देखते हैं कि किस तरह मन हमको भरमाता है आज के समय में :

आभासी दुनिया (इंटरनेट) में 'लाइक', 'कमेंट' एवं कुछ अच्छी बातें 'पोस्ट' करके हमारे सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय (मानवीय) दायित्व की इतिश्री हो जाती है।

तरह-तरह की व्यक्तिगत जीवन के फोटो 'फेसबुक' वगैरह में 'शेयर' करके आत्ममुग्ध होना तथा वास्तविक जीवन से शनैः शनैः दूर होते जाना।

श्रेष्ठता का भाव (वी. आई. पी. सिण्ड्रोम) धीरे-धीरे इतना घर कर जाता है कि हमें पता ही नहीं चलता कि पैरों के नीचे की जमीन कब खिसक गयी।

सारांशतः अपने आपको नित्य थोड़ा समय अवश्य दें, शान्त होकर एकान्त में बैठने का अभ्यास जारी रखें एवं नेत्र कोमलता से बन्द कर कुछ समय के लिए अन्तर्यात्रा पर जरूर जायें। शेष काम परम् सत्ता का ही है। अस्तित्व स्वयं सब सँभाल लेगा।

♦ ♦

❖ मन परमसत्ता का एक खिलौना है।
(mind is a toy of the absolute.)

6.
अवचेतन मन की शक्ति

मन की महिमा अपार है। सुप्रसिद्ध मनोविश्लेषक सिग्मंड फ्रायड ने अध्ययन की सुगमता हेतु मन के तीन स्तरों की चर्चा की–

1. चेतन मन
2. अर्धचेतन मन
3. अवचेतन या अचेतन मन

भारतीय ऋषियों ने मन के ऊर्ध्व तल अर्थात् अतिचेतन (Super Conscious Mind) की विवेचना की है, जिसके तहत अतीन्द्रिय अनुभव होते हैं लेकिन यह तो चेतना (Consciousness) के विकास का अग्रिम पड़ाव है जो कि बहुत आगे की बात है, हाँ इतना कहना जरूर उचित होगा कि पाश्चात्य वैज्ञानिक यहाँ तक नहीं पहुँच सके।

जो भी हो फिलहाल फ्रायड का योगदान इस लिहाज से अन्यतम है कि उसने अवचेतन के महत्व को पहली बार जोरदारी से रेखांकित किया। उसका कहना है कि सागर में तैर रहे एक विशाल हिमखण्ड से अगर मन की तुलना की जाये तो ऊपर दिखने वाला छोटा हिस्सा समूचे हिमखण्ड का लगभग 2/10 अर्थात् दस में से दो भाग ही है। अब अगर एक भाग वह मान लिया जाये, जो पानी में लहरों के वेग से कभी-कभार ऊपर व कभी नीचे होता रहता है जिसे हम अर्ध चेतन कह सकते हैं तो शेष सात भाग अवचेतन (अचेतन) बचा रहता है। सामान्यतया इसे स्वीकारने में कठिनाई होती है क्योंकि

ऐसा लगता है कि इतने बड़े भाग से हम अपरिचित कैसे रह सकते हैं? किन्तु यह सच्चाई है तभी तो जागृत अवस्था में भी बहुधा हम अपने किये गये अतिरंचित (Exaggerated) व्यवहार के बारे में खुद ही चकित रह जाते हैं और कहते हैं कि पता नहीं अमुक अवसर पर इतना ज्यादा क्रोध मुझे क्यों आ गया, जबकि बात छोटी-सी थी। या फिर एक छोटे कीड़े से इतना भयभीत हो जाना कि जैसे वो हमारी जान के लिए खतरा बनने जा रहा हो। दरअसल ऐसी सारी स्थितियाँ मात्र यह दर्शाती हैं कि जागृत अवस्था में भी हमारे व्यवहार को प्रायः हमारा अवचेतन ही दिशा निर्देश दे रहा होता है तभी तो उसे हम समझ नहीं पाते।

कुल मिलाकर तथ्य परक बात यह है कि हम अपने मन के बारे में बहुत कम समझ रखते हैं। नींद की अवस्था में स्वप्नों के माध्यम से हमारा अचेतन मन ही तरह-तरह के कार्य व्यापार करता है। लेकिन स्वप्नों में पूर्ण रूप से व्यक्त न हो पाने के कारण हमारे जागृत अवस्था में किये गये व्यवहारों को कमोवेश प्रभावित करता रहता है। वस्तुतः अवचेतन मन एक बहुत बड़ी शक्ति है जो हमारी जानकारी में न होने के कारण अनचाहे ढंग से हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती रहती है। ऐसा माना जाता है कि हमारे संस्कारगत अनुभव एवं भूतकाल के विशेषकर निषेधात्मक अनुभव इसमें संगृहीत होते हैं। अब जरा सोचिए कितनी विचित्र बात है कि हम अपने द्वारा अज्ञानतावश बहुत सारा कार्य व्यापार किसी ऐसी शक्ति के इशारे पर करते हैं जो कि हम नहीं करना चाहते। इसीलिए अध्यात्म जगत् में इस अवचेतन को जानने और फिर उसकी शक्ति को आत्म विकास में नियोजित करने की बात की जाती है और उसका सबसे प्रामाणिक तरीका पतंजलि द्वारा दिया गया अष्टांग योग है। चूँकि यहाँ पर हमारा उद्देश्य सामान्य जीवन की गुणवत्ता निखारने से है। अतः कह सकते हैं कि अगर धीरे-धीरे आत्मावलोकन (Self Introspection) का अभ्यास किया जाये तो शनैः शनैः एक हद तक अवचेतन शक्ति के विध्वंसात्मक

परिणामों से बचा जा सकता है। निम्न सुझाव द्रष्टव्य हैं-

नित्य आत्मदर्शन (Introspection) की आदत डालें।

अपने द्वारा किसी अवांछित व्यवहार के होने पर बाद में आत्मविश्लेषण कर उसके कारणों को अवश्य समझें।

''कभी-कभी इतना तो चलता है'' की शैली कदापि न अपनायें।

आत्म विकास के रास्ते पर तुलना किसी और से न होकर अपने ही पिछले कार्यकाल से करनी होती है।

निकटस्थ लोगों से अपने बारे में उनकी राय जानने का यदा-कदा प्रयास करें, जिससे अपने व्यवहार का वस्तुगत आकलन हो सके।

सजगता (Awareness) एवं संवेदनशीलता (Sensitivity) सदैव बनाये रखें।

बिल्कुल ठीक कहा है किसी ने -

''जीत चुका जो सकल विश्व को,
उसे हराती शंका मन की।
पूर्ण राम तुम हो सकते हो,
जला सको यदि लंका मन की।।''

♦ ♦

❖ तुम्हारे पैरों के नीचे कोई ज़मीन नहीं।
कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं।।

❖ मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचा जाता।
हम घर में भटके हैं कैसे ठौर ठिकाने आयेंगे।।

❖ अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार।
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार।।

-दुष्यन्त कुमार

7.

मन - संयम ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ

कुछ लोग तो मन के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिह्न लगाते हैं। वैसे भी मन विचारों (संकल्प/विकल्प) के रूप में ही द्रष्टव्य है। अलग से उसकी और कोई पहचान नहीं है। मन को पदार्थ की संज्ञा दी गयी है, फिर भले ही वह कितना भी सूक्ष्म हो। जो भी हो संवाद की सुगमता हेतु नाम करण तो करना ही होता है। कुल मिलाकर हमारे विचारों (शुभ-अशुभ) का समुच्चय ही 'मन' है।

मन एक तरह से हमारी चेतना (Consciousness) एवं शरीर के मध्य सेतु का काम करता है। मन जब शरीर के स्तर पर ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वाह्य संसार से जुड़ता है तो हमें जागतिक जागरूकता होती है। अर्थात् दुनियाँ में हमें अपने होने का अहसास होता है। और यही मन जब आन्तरिक चेतना (Consciousness) के सम्पर्क में आता है तो हमें अतीन्द्रिय अनुभव होने लगते हैं क्योंकि तब वह इन्द्रियों की सीमाओं का निष्क्रमण कर चुका होता है। तभी तो भारत में दो स्तरों की बात की जाती है - एक 'जानना' (Knowing) और दूसरा वैसा 'हो जाना' (Being)। मन की इस द्विमुखी (दोहरी) कार्य प्रणाली की वजह से ही मानव की जटिलताओं का जन्म होता है।

दरअसल हमारा मनोशारीरिक यन्त्र अपनी जानकारी (अनुभव) को अन्तिम सत्य के रूप में मानता है जब कि मन अपनी निजी सीमाओं की वजह से वैसा कर सकने में सक्षम नहीं है। मुख्यतया

सीमाएँ निम्न हैं -

1. मन एक विशेष तरीके से ही सूचनाओं को ग्रहण करता है।

2. मन के द्वारा ग्रहण की जाने वाली सूचनाओं की एक सीमा है। और

3. मन अपने एक खास तरीके से ही अर्जित सूचनाओं की व्याख्या करता है।

और इन सीमाओं के चलते ही 'मन' जो कि चेतना (Consciousness) का एक सहायक यन्त्र मात्र है, अपने को स्वयंभू मान बैठता है। यहीं जन्म होता है अहं भाव का जो कि विरोधाभासी जाल में फँसाए रखता है।

कारण यह है कि परिवर्तन एवं अस्थायित्व को जानते हुए भी स्थिरता एवं सातत्य की चाहत लगातार बनी रहती है।

सारांशत: ऐसे मन को संयमित रखना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। अन्यथा आजीवन 'अस्मिता' की तलाश इंसान को भटकाती रहती है। आत्म स्वरूप (Self Sameness) का सतत स्मरण एवं मन की विरोधाभाषी प्रकृति व उसकी सीमाओं के प्रति लगातार सजग बने रहना ही इस मूलभूत समस्या का निराकरण है।

आइए बाहरी प्रपंचों से विरत होकर अपनी आन्तरिक दुनिया में 'मन' की गतिविधि पर सजग दृष्टि बनाये रखने का क्रमिक एवं सतत् अभ्यास जारी रखने का शुभ संकल्प लें।

♦ ♦

❖ सन्तों तन खोजा मन पाया।
मन ही श्रोता, मन ही वक्ता; मन ही निरंजन राया।।
मन गुण तीन पाँच तत्व मन ही मन का सकल पसारा।
जैसे चन्द्र उदक में दरसे है नाहीं पर न्यारा।।

–कबीर

8.

मानसिक स्वच्छता

जिस तरह शारीरिक स्वच्छता का अपना महत्त्व है और हम सब जानते हैं कि शारीरिक स्वच्छता के कारण ही हम बहुत सारी संक्रामक बीमारियों से बचे रहते हैं। वैसे भी शारीरिक स्वस्थता के लिए शारीरिक स्वच्छता पहला कदम है। ठीक इसी तरह मानसिक स्वच्छता का भी महत्त्व है। सच कहें तो मानसिक स्वच्छता का शारीरिक स्वच्छता से कुछ ज्यादा ही महत्त्व है। वजह यह है कि मानसिक गन्दगी बाहरी आँखों से दिखती जो नहीं। अत: जब तक उसका दुष्परिणाम स्पष्ट रूप से नजर नहीं आने लगता, तब तक उसकी उपेक्षा होती रहती है।

प्राय: जब हम लोग मानसिक अस्वस्थ लोगों से मानसिक स्वच्छता की बात करते हैं, तो उन लोगों का जवाब होता है कि समय ही नहीं मिलता, यह सब करने का। वास्तविकता यह है कि हमारे मन में जो कुछ भी चल रहा होता है, प्राय: हमें पता ही नहीं होता जबकि वातावरण में विभन्न स्रोतों से हमारे मन में गन्दगी प्रवेश करती रहती है। दरअसल इसके लिए हमें प्रेक्षण करने का अभ्यास करना होगा। अर्थात् हमारे मन में जो चल रहा है, उसके सम्पर्क में रहना होगा। इसको इस तरह से समझा जा सकता है; मसलन हमारी श्वास-प्रश्वास की क्रिया लगातार चलती रहती है और हमें उसके सम्पर्क में रहने की जरूरत नहीं होती। पर इसी तरह से जो भी विचार हमारे मानस पटल

पर लगातार चलते रहते हैं और हम अगर उनके बारे में जागरूक नहीं हैं, तो कुहराम मच सकता है और परिणाम स्वरूप अनचाहे ढंग से हम तनाव ग्रस्त हो जाते हैं। फलतः हम घबराहट या अवसाद जैसी मनोव्याधियों से घिर जाते हैं।

बस इसके लिए थोड़ा सा ठहराव चाहिए और हमें विचार करना होगा कि अगर हम अपने लिए जरा सा भी समय नहीं निकाल पा रहे हैं, तो जीवन से भी बढ़कर किस परियोजना में इतना व्यस्त हो गये हैं, जो अन्ततः जीवन में खुशी लाने के लिए उपयोगी साबित होगी।

अतः इसके लिए मन की प्रकृति को समझना होगा और तदनुसार सजगता बनाये रखनी होगी। मुख्य बातें बिन्दुवार इस तरह हैं:

- मन की प्रकृति बाहर भागने की होती है, फलतः अपनी परेशानियों के कारण वो बाह्य वातावरण में खोजता है और उनमें ही उलझता रहता है।
- मन कभी अनुशासन नहीं चाहता और मनमानी करने पर आमादा रहता है।
- मन अपनी स्वतन्त्रता व अपनी सनक को दुनिया में सर्वोपरि मानता है।
- मन की चाहत कई बार अपने में ही विरोधी होती है अर्थात् दो विपरीत ध्रुवीय आकांक्षाएँ पालता रहता है।
- स्वभावतः चंचल होने की वजह से मन स्थिर होना ही नहीं चाहता।

सारांशतः मानसिक स्वच्छता बनाये रखने के लिए निम्न कदम उठाने होंगे :-

नियमित कम से कम दिन में एक बार कुछ देर के लिए ही सही आँखें बन्द कर शान्त बैठने का अभ्यास शुरू करें।

धीरे-धीरे अभ्यास मात्र से मन सधने लगता है और एक हद तक आप अपने मन पर काबू पाने लगते हैं।

हमें यह अन्तरतम् से स्वीकारना होगा कि हमसे मन है ना कि

हम मन से।

हमारी सोच ही हमारे मन को गढ़ती रहती है अतः अपनी सोच के बारे में सजगता बढ़ानी होगी। (What we think we become- "What we feed grows & What we starve dies- Hence, Be Mindful of thoughts and observe the mind."

मूलतः अन्दर की ओर प्रवृत्त होते ही मन की सफाई शुरू होने लगती है क्योंकि जानबूझकर तो कोई कूड़ा-करकट अन्दर आने नहीं देगा।

ध्यान रहे, हमारा जीवन हमारी जानकारी व तकनीकी कलाकौशल पर निर्भर नहीं करता, बल्कि निर्भर करता है, जीवन के प्रति हमारे नजरिये एवं हमारी आदतों पर। तो फिर देर किस बात की है; जरा सा ध्यान अपनी ओर देना शुरू करें। आन्तरिक सफाई स्वयमेव होने लगेगी।

♦ ♦

❖ कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिः इति चिन्त्यं मुहुर्मुहः।।

(कौन-कौन मित्र हैं, कौन देश है, आय व व्यय क्या हैं, मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति क्या है? इन सब का बार-बार चिन्तन करना चाहिए।)

9.

मानसिक स्वास्थ्य के तीन प्रमुख अंग

आप तनाव की ओर उन्मुख न हों इसके लिए जीवन रूपी तिपाई के तीन स्तम्भों का ज्ञान जरूरी है। इसे स्वस्थ जीवन की त्रयी भी कह सकते हैं। इन तीन कारकों का महत्व भी उसी क्रम में है जिस क्रम में उन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है। ये तीनों कारक प्राथमिकता के लिहाज से निम्नांकित हैं –

1. कार्य (कर्म) – वैसे तो बिना कर्म के जीवन चल ही नहीं सकता लेकिन यहां पर मानसिक कर्म (विचार अर्थात् संकल्प/विकल्प) की चर्चा नहीं हो रही है। यहां पर कार्य (कर्म) से आशय शरीर द्वारा किया गया कर्म है। ज्यों ही बच्चा चलने-फिरने लायक होता है शारीरिक कर्म प्रारम्भ हो जाते हैं और जीवन पर्यन्त चलते रहते हैं। कर्म अर्थात् शरीर की क्रियाशीलता ज्यों ही रुकी जीवनी शक्ति क्षीण होने लगती है और आप मृतप्राय हो जाते हैं। वस्तुतः 'कार्य प्रेम का प्रकटीकरण है' (Work is love made visible). आशय यह है कि स्नेह को प्रकट करने के लिए तत्सम्बन्धित कुछ कार्य सम्पादित करना होता है वरना उस भाव की संप्रेषणीयता नहीं हो सकती। दूसरा अभिप्राय यह भी है कि शारीरिक कर्म (कार्य) करने से अन्दर एक सन्तुष्टि का भाव उपजता है जो मानसिक स्वस्थता के लिए आधारभूत नींव का काम करता है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि 'कार्य पवित्रता की ओर बढ़ाया

गया पहला कदम है' (Work is the first step towards sanctity).

किसी को कितनी भी सुख-सुविधा हो लेकिन अगर वो कर्मशील नहीं है तो कभी भी मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होगा और उसका दिमाग अप्रत्याशित (अन्जाने) ही वैचारिक रूप से अनेक उलझनें उत्पन्न कर लेगा। अतः कर्मशीलता (सक्रिय जीवन-शैली) स्वस्थ जीवन का प्रथम सोपान है।

2. भावनाओं/विचारों की साझेदारी – जीवन में कम से कम एक रिश्ता ऐसा जरूर रखें जिससे खुले ढंग से भाव-विचार साझा कर सकें। वस्तुतः यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मन में उपजी बात अगर व्यक्त नहीं होती तो मन उसे राई का पहाड़ बना देता है और अगर कोई निषेधात्मक भाव-विचार (बुरा ख्याल) हुआ तो स्थिति भयावह हो सकती है, क्योंकि दमित इच्छाएं/आकांक्षाएं अचेतन का हिस्सा बनती हैं और समय आने पर हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आच्छादित कर लेती हैं फलतः हम मानसिक रूप से रुग्ण हो जाते हैं। ज्यों ही अपने प्रिय व्यक्ति (मित्र) से भाव-विचार साझा करते हैं तो वह भाव हल्का हो जाता है और अन्तर्मन को प्रभावित नहीं कर पता। अब यहां पर यह जान लेना समीचीन है कि ऐसी साझेदारी किस तरह के रिश्तेदार से की जा सकती है।

वैसे तो जिस रिश्ते में भी मित्रता का भाव बढ़ जाता है वह रिश्ता ज्यादा प्रगाढ़ (मजबूत) हो जाता है। स्पष्टतः पारिवारिक रिश्तों में पूरी तौर पर संप्रेषणीयता नहीं हो पाती क्योंकि छोटे या बड़े होने के कारण गुरुता या लघुता का भाव दो लोगों को एक ही वैचारिक तल पर नहीं होने देता अतः संप्रेषण अधूरा ही रहता है। आप अपनी उम्र के अर्थात् लगभग समवयस्क एवं अपने ही लिंग के व्यक्ति से ही खुले ढंग से पूरे तौर पर भाव-विचार साझा कर सकते हैं। कुछ लोगों का तर्क होता है कि जीवन के कुछ रहस्य आप किसी से नहीं कह सकते। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि आप अगर कुछ रहस्य अपने तक ही रखेंगे तो निश्चित तौर पर मानसिक दबाव का दंश जीवन भर

झेलने के लिए तैयार रहिए। इस तरह के संप्रेषण से बहुधा आपको स्वत: अन्तर्दृष्टि भी प्राप्त होती है जो कि अन्य तरीकों से सम्भव नहीं होती।

3. स्वस्थ मनोरंजन – नित्यप्रति संसार में ऐसा घटित होता रहता है जो कि आपके मनोनुकूल नहीं होता। नियम यह है कि कुछ भी मन के प्रतिकूल होता है तो मन पर एक निषेधात्मक प्रतिच्छाया पड़ती है। अब जरूरत होती है कि ऐसी छाया को स्वच्छ करने की हमारे पास कोई तकनीक होनी चाहिए और वह तकनीक है स्वस्थ मनोरंजन। आइए हम लोग स्पष्ट रूप से समझ लें कि स्वस्थ मनोरंजन से हमारा अभिप्राय क्या है?

प्राय: ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से सुखभोग को भी हम स्वस्थ मनोरंजन मानते हैं किन्तु यह सच नहीं है। इस श्रेणी में मात्र वो क्रियाएं आती हैं जो समाज द्वारा स्वीकृत हों और जिनमें हमारी सक्रिय भागीदारी हो, जैसे- खेलना, नृत्य एवं बागवानी वगैरह।

कभी-कभी जिस पेशे से हम जुड़े होते हैं उसे ही मनोरंजन का साधन भी समझते हैं। वस्तुत: यह एक मन का भटकाव है। दरअसल काम में खुशी लेना तो पहली जरूरत है जो कि वर्णित हो चुकी है अर्थात् अगर हम काम में खुशी नहीं ले पाते तो हम निष्ठापूर्वक कार्य सम्पादित नहीं कर रहे और हम आत्मघात कर रहे हैं। अगर कार्य मात्र समाज सेवा हेतु किया जाय तो यह उस श्रेणी में जरूर आ जायेगा।

एक बात और स्पष्ट करने लायक है और वो यह है कि संप्रेषणीयता एवं स्वस्थ मनोरंजन दोनों कमोवेश एक ही लक्ष्य साधते हैं और वह यह है कि हमारे मन को एक झरोखा (खिड़की) प्रदान करते हैं जिसके माध्यम से अवांछित भाव-विचार निष्कासित हो जाते हैं फलत: हम हल्का महसूस करते हैं और मन एक ताजगी से भर जाता है। जी हाँ संप्रेषणीयता का एक विकल्प है स्वस्थ मनोरंजन। परन्तु मैं पूरे प्राण प्रण से यह कह रहा हूं कि इन दोनों का रहना अतिआवश्यक है क्योंकि जीवन की जटिलताओं में प्रतिपल प्रतिकूल

परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। स्वस्थ मनोरंजन की एक विशेषता यह भी है कि बिना कुछ व्यक्त किये स्वत: ही मानस पटल धवल होता रहता है।

♦ ♦

- ❖ स्वतन्त्रता असम्भव है, परतन्त्रता आभासी है व मुक्ति अन्तिम भारतीय अभीप्सा है। बाकी अभिलाषाएँ मृगतृष्णा हैं।
- ❖ You move from one bondage to another due to fear of freedom.

  (स्वतन्त्रता के भय से आप एक बन्धन से छूटकर दूसरे बन्धन से बँध जाते हैं। अर्थात् संग-साथ थोड़ा आश्वस्त करता है; सुकून देता है।)

10.

मन स्वस्थ तो तन स्वस्थ

स्वास्थ्य शब्द स्वयं में अपनी परिभाषा देता है जिसका अर्थ है स्वयं में स्थित होना अर्थात् स्व (सेल्फ) से न बहकना। जब अपने से यानी कि स्वयं से हमारी दूरी बन जाती है तब हम अस्वस्थ हो जाते हैं। स्पष्ट है कि शारीरिक स्वास्थ्य तभी सम्भव है जब हम मानसिक रूप से ठीक हों। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए बताया है कि मात्र बीमारी की अनुपस्थिति को स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता वरन् इसमें शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ सामाजिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य भी सम्मिलित है। वस्तुत: शारीरिक और मानसिक स्थितियाँ एक दूसरे को प्रभावित ही नहीं करती बल्कि ये अन्योन्याश्रित हैं अर्थात् इनकी एक दूसरे पर निर्भरता है। चिकित्सा जगत् के शोध बताते हैं कि जो व्यक्ति प्राय: उदास (हताश एवम् निराश) रहता है उसे कब्ज की शिकायत हो जाती है एवम् कब्ज की परेशानी अगर लम्बे समय तक रही तो कालान्तर में उसे उदासी भी हो जायेगी।

अपने देश में लगभग तीन दशक पूर्व तक मानसिक अस्वस्थता को पागलपन (चिकित्सकीय भाषा में साइकोसिस) के रूप में ही देखा जाता था। लेकिन अब स्थिति बदल चुकी है।

एक शुभ लक्षण यह है कि डिप्रेशन (उदासी) शब्द ने पागलपन का स्थान ले लिया है जो कि समाज की एक हद तक

स्वीकार्यता को दर्शाता है। एक और बात गौर तलब है कि मानसिक अस्पताल में लोग अब बेहिचक परामर्श लेते हैं। बच्चों के सन्दर्भ में तो यह बात शत प्रतिशत लागू होती है। ये तथ्य मानसिक अस्पताल के आँकड़े उजागर करते हैं।

ओ. पी. डी. (आउट पेसेंट डिपार्टमेंट) में परामर्श लेने वालों की संख्या दो से तीन गुनी तक बढ़ गयी है। इसका यह अर्थ नहीं कि पहले के मुकाबले रोगी बढ़ गये हैं बल्कि इसका सही अर्थ यह है कि लोगों में पहले की तुलना में काफी अधिक जागरुकता बढ़ी है।

अब आवश्यकता है कि सकारात्मक (विधेयात्मक) सोच के तहत लोगों को इस बारे में संवेदनशील बनाया जाये कि किन बातों का ध्यान रखें कि मानसिक बीमारी या मानसिक अस्वस्थता न होने पाये एवम् वे अपनी समस्त क्षमताओं का समुचित उपयोग कर सकें।

मानसिक स्वास्थ्य के दस सूत्र

इस विषय के विषेशज्ञों ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर कुछ मूलभूत सूत्र निकाले हैं जिनको अगर ध्यान में रखा जाये तो व्यक्ति तनाव से बचा रह सकता है।

आत्म स्वीकार- आप जैसे हैं उसे स्वीकारें। प्राय: हम अपने को नकारते हैं और किसी और की तरह बनना चाहते हैं, जबकि यह स्थिति इन्सान को द्वन्द्व की दशा में डालती है। प्लेटो ठीक कहते हैं- मैं सारी दुनिया के विरोध में खड़ा होना पसन्द करूंगा बजाय इसके कि मैं अपने ही विरोध में खड़ा हो जाऊँ। जब हम अपने को नकारते हैं तो वास्तव में हम अपने आप से लड़ रहे होते हैं। स्पष्ट है कि जीवन की सकारात्मक यात्रा स्वयम् को स्वीकारने के बाद ही प्रारम्भ होती है।

अभिव्यक्ति- हमारे जो भी मनोभाव हैं जब उनको अभिव्यक्ति मिल जाती है तो उनका प्रभाव हल्का हो जाता है, अन्यथा मन की एक प्रवृत्ति है 'राई को पहाड़ बनाने' की। यहाँ यह स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि अभिव्यक्ति एक सच्चे मित्र से ही की जा सकती है जिस पर पूरा भरोसा हो।

सक्रिय शौक– ऐसा कुछ हमें जीवन में हमेशा करते रहना चाहिये जिसे करने से खुशी मिलती हो। कार्य तो हम करते ही हैं लेकिन कार्य के परिणामस्वरूप हमें कुछ वस्तुगत रूप से उपलब्ध होता है जबकि शौकिया काम मन की प्रसन्नता के लिए किया जाता है। एक और रहस्य इसमें छिपा है कि इसमें व्यक्ति को अपना दु:ख-दर्द किसी से कहने की भी आवश्यकता नहीं होती और वह अपने आप तिरोहित हो जाता है।

दूसरों की मदद लेने में संकोच न करें– प्राय: संकोची लोग ऐसा सोचते हैं कि उन्हें अपनी परेशानी स्वयम् ही हल करनी चाहिये और ऐसा न कर पाना व्यक्तित्व की एक कमजोरी है जबकि यह सर्वथा गलत है। हममें से कोई पूर्ण नहीं है और ऐसी हठधर्मिता स्वयम् की परेशानी बढ़ा देती है।

दूसरों की भावनाओं का भी ख्याल रखें– एक तरह से उपर कही हुई बात की यह पूरक पंक्ति है। अर्थात् जिस तरह से हम दूसरों की मदद लेते हैं, उसी भाव को एहसास कर हमें दूसरों की सहायता भी करनी चाहिये, अर्थात् दूसरों की भावनाओं का ख्याल रखना चाहिए।

मित्रों एवम् सम्बन्धियों के सम्पर्क में रहें– ऐसा इसलिए आवश्यक है कि आपकी मानसिक दुनियाँ में अगर विभिन्न तरह के लोगों की स्मृतियाँ होंगी तो आप समाज में औरों के साथ अच्छा सामंजस्य बना पायेंगें और आपका अधिकतम लोगों के साथ समायोजन हो सकेगा।

प्रकृति के सम्पर्क में रहें– हमारा जीवन प्रकृति से जितना दूर होता जाता है, उतना ही बनावटीपन आने लगता है। अत: कोशिश होनी चाहिये कि जिन मूलभूत पंचतत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से हम निर्मित हैं, उन्हें कभी न भूलें। इस बात का ख्याल

रखने पर हम सम्पूर्ण अस्तित्व से जुड़े रहते हैं अन्यथा एकाकी होकर मन तरह-तरह की कृत्रिम समस्यायें पैदा कर लेता है।

जीवन मूल्य स्पष्ट हों– हमारे जीवन मूल्य जितना स्पष्ट होते हैं, उतना ही हम अन्तर्द्वन्द्वों से बचे रहते हैं। प्राय: अन्तर्द्वन्द्व की जड़ में मूल समस्या यह होती है कि हमें सब कुछ चाहिये अर्थात् हम कुछ पाने के लिए कुछ खोने को तैयार नहीं होते जो कि प्राकृतिक नियम है।

सक्रिय रहें– इसका आशय यह है कि बिना कर्मशील हुए हमें कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। बिल्कुल ठीक कहा गया है कि 'खाली दिमाग शैतान का घर' अर्थात् जब हम कार्य में संलग्न होते हैं तो अनचाहे विचारों से अनायास ही बचे रहते हैं।

समर्पण का भाव बनाये रखें– आदिसत्ता का अंश होने के नाते उसके प्रति सदा समर्पण भाव में रहना अपरिहार्यता है क्योंकि अपने को पृथक् रूप में देखना अहमन्यता को बढ़ावा देना है।

सारांशत: यह कह सकते हैं कि अगर हम अपने भाव विचारों के सम्पर्क में बने रहें तो हमारा व्यवहार सदैव संतुलित एवम् विवेक सम्मत होगा और इस तरह हमारा मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। ऐसा न होने पर दरअसल हमारा व्यवहार अवचेतन से निर्देशित होने लगता है और मनोरुग्णता प्रवेश कर जाती है। नित्यप्रति कुछ देर शान्त बैठना, नेत्र बन्द कर धीमी गहरी श्वास लेना एवम् मन में चल रहे कोलाहल को मात्र देखने का अभ्यास धीरे-धीरे हमारा सम्पर्क भाव-विचारों से जोड़ देता है और फिर हम जान पाते हैं कि मन में कब क्या और क्यों चल रहा है। भाव-विचार कर्म की क्रमिक श्रृंखला के प्रति जाग जाना ही मानसिक स्वस्थता है। मन को साध लेना ही सबसे बड़ी साधना है एवम् जागरुकता (सजगता) ही सर्वस्व है।

♦ ♦

11.

हम स्वप्न क्यों देखते हैं?

स्वप्नों की अपनी ही दुनियां है। दरअसल स्वप्न हमारे अवचेतन मन की देन हैं और प्रायः हमारी अतृप्त इच्छाएं स्वप्नों के माध्यम से तृप्त होने का प्रयास करती हैं।

पाश्चात्य विशेषज्ञों (जिनमें सिग्मण्ड फ्रायड एवं कार्ल गुस्टेव जुंग के नाम प्रमुख हैं) ने स्वप्नों पर काफी काम किया है। वे लोग स्वप्नों के विश्लेषण से व्यक्ति के बारे में बहुत कुछ जान जाते थे। फ्रायड के अनुसार स्वप्न मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं –

1. दुश्चिन्ता स्वप्न (Anxiety Dreams) – ये वे स्वप्न हैं जो हम लोग आये दिनों देखते हैं। इनकी विषय वस्तु हमारी दिन-चर्या के कार्यों से सम्बन्धित होती है। वस्तुतः जो रोजमर्रा के अधूरे काम-काज होते हैं उन्हीं का प्रकटी-करण इन स्वप्नों में होता है। इसीलिए इन्हें दुश्चिन्ता स्वप्न (Anxiety Dreams) कहते हैं।

2. दण्डात्मक स्वप्न (Punishment Dreams) – इन स्वप्नों को भी हम सब ने कभी न कभी जरूर देखा होगा। अक्सर स्वप्न में हम देखते हैं कि कोई हमारा पीछा कर रहा है और हम ठीक से दौड़ नहीं पा रहे हैं, हम पैर आगे बढ़ा रहे हैं और पैर पीछे पड़ रहे हैं या फिर पैर उठ ही नहीं रहे हैं। कभी-कभी हम किसी ऊँचाई पर चढ़ रहे होते हैं और बार-बार फिसल जाते हैं अथवा कोई भयानक दृश्य देखते हैं और घबराते हुए उठ कर बैठ जाते हैं। इस प्रकार के स्वप्न

दण्डात्मक स्वभाव के होते हैं अर्थात् पीड़ा जन्य होते हैं क्योंकि अन्त में तकलीफ दे जाते हैं।

3. प्रयास जन्य इच्छापूर्ति स्वप्न (Attempted Wishfulfillment Dreams) – स्वप्नों का बड़ा समूह इसी तरह का होता है जिनमें हम सभी अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए एक गरीब व्यक्ति अमीरी का स्वप्न देखेगा या फिर एक भूखा व्यक्ति सुस्वाद भोजन सामग्री का स्वप्न में आनन्द लेगा। प्रायः दमित काम-वासनाओं की तृप्ति इसी तरह के स्वप्नों से होती है। विद्यार्थीगण अपना मनचाहा परीक्षा फल स्वप्नों में प्राप्त कर लेते हैं।

सभी प्रकार के स्वप्न उपर्युक्त तीन भागों के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते। अतः बाद में दो और समूहों को जोड़ा गया और वे हैं –

4. समस्या पूर्ति स्वप्न (Problem Solving Dreams) – अक्सर कई वैज्ञानिकों ने लिखा है कि उन्हें अपनी शोध का चरम निश्कर्ष स्वप्न के माध्यम से मिला। साहित्यकारों व कवियों ने भी इसी तरह का उल्लेख किया है। मुझे स्वयं एक शोध की उपकल्पना स्वप्न के माध्यम से मिली थी। जाहिर है जिस समस्या से लगातार हम जूझ रहे होते हैं रात में अवचेतन मन हमें सहयोग प्रदान कर देता है। अस्तित्व के रहस्य निराले हैं।

5. भविष्यवाणी वाले स्वप्न (Prophetic Dreams) – कभी-कभी ये देखने में आता है कि व्यक्ति भविष्य में होने वाली घटनाओं को स्वप्न में पहले ही देख लेता है। दक्षिण भारत की एक महिला दूर-दराज में हुई घटना का हूबहू वर्णन कर देती थी जो कि बाद में प्रत्यक्षतः वैसा ही पाया जाता था। अब ऐसा कैसा होता है इसे ठीक-ठीक समझा पाना कठिन है। बस इतना कहा जा सकता है कि जिसकी चेतना जहाँ केन्द्रित है वहाँ का आभास उसे हो जाता है। अस्तित्व में सब एक दूसरे से परस्परावलम्बन (Interdependence) में हैं जिसे सामान्य बुद्धि से नहीं समझा जा सकता।

आइये अब स्वप्नों की कुछ विशेषताओं के बारे में जानकारी हासिल करते हैं।

दरअसल स्वप्न अपनी ही भाषा में बोलते हैं अर्थात् इनकी भाषा सीधी-सादी नहीं होती। कारण यह है कि स्वप्न में भी हमारा अहम् (Ego) एक हद तक सजग रहता है। उदाहरण के तौर पर अगर आप अपने अभिभावक या गुरु से नाराज हैं तो स्वप्न में भी आप उनको सीधे दण्ड नहीं देंगे बल्कि किसी और के द्वारा उनको दण्डित होता हुआ देखकर लुफ्त उठाएंगे। इसका आशय यह हुआ कि वास्तविक तथ्य एवं स्वप्न के दृश्य में जुड़ाव बड़ा तकनीकी होता है लेकिन हमारे सभी स्वप्न अर्थपूर्ण जरूर होते हैं भले ही उन्हें हम समझ पायें या नहीं।

स्वप्नों की कुछ प्रमुख विशिष्टताएं इस प्रकार हैं -

(A) इनकी विषय वस्तु प्राय: प्रतीकात्मक होती है अर्थात् प्रतीकों के माध्यम से संदेश देने का प्रयास होता है।

(B) प्राय: उचित माध्यम को तलाश कर मनोभाव को उस पर विस्थापित कर दिया जाता है। ऐसा सामाजिक वर्जनाओं से बचने के कारण होता है।

(C) कभी-कभी विषय वस्तु को इतना संश्लिष्ट (Condense) कर दिया जाता है कि साधारण ढंग से समझा ही नहीं जा सकता।

(D) स्वप्न का प्रदर्शन बड़े ही नाटकीय ढंग से होता है।

(E) जो दुष्टजन वास्तविक जीवन में करते हैं साधुजन प्राय: स्वप्नों में करते हैं।

(F) जगने पर तुरन्त स्वप्न लिख लेना चाहिए अन्यथा जागृत मन उसमें अपनी ओर से अनजाने ही कुछ जोड़-घटा देता है।

(G) विषय-वस्तु को काफी छुपाकर (Disguise) प्रकट किया जाता है जिससे कि अहम् का सेंसर बोर्ड उसे दिखाने की अनुमति प्रदान कर दे।

(H) स्वप्न हमारी नींद को सुरक्षा प्रदान करते हैं। जबकि प्राय:

लोग ये कहते सुने जाते हैं कि ठीक से सो नहीं पाये स्वप्न देखते रहे सारी रात। अरे भाई स्वप्न देखने का आशय ही है कि आप सो रहे थे।

अन्तत: स्वप्न हमारे अवचेतन मन की उपज हैं और इस माध्यम से अवचेतन अपनी ग्रन्थियों को हमारे चेतन मन की ओर ठेलता है और इस तरह अपना भार कम करता है। हमें इनके प्रति अपनी स्वीकार्यता बढ़ानी चाहिए। हाँ, अगर कोई स्वप्न आपको बार-बार उसी स्वरूप में दिख रहा है तो उसका जरूरी कोई खास अर्थ हो सकता है। ऐसे में किसी चिकित्सा मनोवैज्ञानिक की मदद ली जा सकती है। हमारा दृष्टिकोण ही हमें परेशानी में डालता है चाहे वो स्वप्नों के बारे में हो या फिर नींद के बारे में। अस्तित्व में जो कुछ भी घट रहा है उसके प्रति एक गहरा स्वीकार भाव और मन में एक खुलापन सब कुछ अंगीकार कर लेने का। बस सब कुछ ठीक लगने लगता है। ठीक कहा है किसी ने "चतुर वे हैं जो समस्या को सुचारु रूप से हल कर लेते हैं; लेकिन बुद्धिमान वे हैं जो समस्या को आने ही नहीं देते"।

♦ ♦

- ❖ I live not in myself but I become a portion of that around me.
  (हम अपने में ही नहीं रहते, बल्कि अपने परिवेश का हिस्सा हो जाते हैं।)

- ❖ हमारे तत्व ज्ञान की खाक बराबर कीमत नहीं,
  अगर वह तत्काल प्रेममय सेवा में नहीं बदल जाता।
  -गाँधी जी

12.

हम प्रतिक्रिया क्यों करते हैं?

किसी भी क्रिया के उत्तर में की जाने वाली क्रिया को प्रतिक्रिया कहते हैं। या यूँ कहें कि किसी भी घटना के सन्दर्भ में जो कुछ कहा या बोला जाता है, उसे प्रतिक्रिया कहते हैं। अंग्रेजी में इसके लिए दो शब्द हैं, एक है Reaction (प्रतिक्रिया) और दूसरा है Response (प्रतिकार या प्रतिउत्तर)। उत्तर या प्रतिक्रिया एक ही तरह के हैं। कहना चाहिए कि प्रश्न के जवाब में उत्तर होता है और क्रिया के जवाब में प्रतिक्रिया।

Response शब्द अपने स्वभाव में उदासीन या सकारात्मक (Neutral or Positive) है और यही उसकी विशेषता है। तभी तो कहा जाता है- "Never React Give a Response" दरअसल जब हम प्रश्न का उत्तर या प्रतिक्रिया करते हैं तो हमारा अवधान अपने ऊपर न होकर दूसरे पर होता है। अर्थात् प्रश्नकर्ता अथवा क्रियाकर्त्ता पर होता है और यही भाव हमें अपने केन्द्र से हिला देता है। फलस्वरूप कई बार हम न चाहते हुए भी कुछ अन्यथा कर बैठते हैं। फिर चाहे वो वाणी के स्तर पर हो या फिर कार्य के स्तर पर।

यहाँ पर समझने वाली बात मात्र यह है कि जब भी हम 'स्व' में स्थित नहीं होते 'अस्वस्थ' हो जाते हैं। अब आप ही बताएँ अस्वस्थ मन से स्वस्थ व्यवहार की कल्पना कैसे की जा सकती है। एक बात और कह देनी समीचीन होगी, जब हम कई बार ऐसा करते हैं, तो

फिर आदत के रूप में वह हमारा स्वभाव बन जाता है और फिर यान्त्रिक रूप से वैसा व्यवहार करने के हम आदी होते चले जाते हैं।

इसका मनोविज्ञान यह है कि जब भी हम दूसरे को ध्यान में रखकर भाव-विचार लाते हैं तो हम निपट स्वार्थी होते हैं। कारण यह है कि दूसरे का आकलन तो हम उसके वस्तुगत व्यवहार से करते हैं, जबकि अपना अपनी आन्तरिक भाव-दशा से। और हम सब भली-भाँति परिचित हैं कि दिल से तो हम सब अच्छे होते ही हैं।

इससे जुड़ी हुई दूसरी बात यह है कि जब हम प्रतिक्रिया स्वरूप उद्वेलित हो उठते हैं, तो फिर हम बच्चे बन जाते हैं अर्थात् बच्चे की भाव-दशा (Child Ego State) में चले जाते हैं और फिर एक बच्चे की तरह अपने सन्दर्भ में विह्वल होने लगते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भावात्मक (Emotional) होते ही तार्किकता (Rationality) हमारा साथ छोड़ देती है और फिर शुरू हो जाता है द्वन्द्वात्मक परिस्थिति में उलझते जाने का अन्तहीन सिलसिला। तभी तो कहा जाता है "When you are emotional rationality goes away".

अब अगर इस दुष्चक्र से बचने की बात करें तो हमें निम्न कुछ शाश्वत तथ्यों को न सिर्फ जान लेना होगा, बल्कि समय-समय पर अपने को आत्म सुझाव भी देते रहने होंगे, जिससे भटकाव से बचा जा सके।

- 'मन' कभी किसी का भी अनुशासन नहीं चाहता और बिना अनुशासित किये कुछ भी सार्थक कर पाना सम्भव नहीं।
- हम सब का जीवन हमारे ज्ञान व कौशल पर उतना आधारित नहीं होता, जितना हमारी आदतों एवं जीवनदृष्टि पर।
- हम हमेशा अपने को ही पूरी तरह से ठीक मानते हैं, जो कि हमारी (अर्थात् 'मन') की एकांगी एवं बचकानी सोच है।

सारांशत: किसी भी परिस्थिति में एक मूक दर्शक की भाँति आकलन कर व्यवहार करें। प्रश्न कोई भी कर सकता है किन्तु उत्तर देने या न देने का अधिकार आपके पास है। जितना सम्भव हो सके

पर चिन्तन से स्व चिन्तन की ओर मुड़ें; राह आसान होने लगेगी।

कहना चाहिए बाहरी दुनिया से अलग आन्तरिक दुनिया (अपना मानसिक संसार) में प्रवेश करने का धीरे-धीरे अभ्यास प्रारम्भ करें। आपको शनैः शनैः किसी का भी व्यवहार बहुत अतिरंजित (विचित्र) नहीं लगेगा, क्योंकि आपकी मानसिक दुनिया में सब कुछ प्रतीक रूप में उपलब्ध है। बस जरूरत है उसे देखने के लिए अपनी ओर मुड़ने की।

♦ ♦

❖ और थोड़ा और आओ पास
मत कहो अपना कठिन इतिहास।।
मत सुनो अनुरोध, बस चुप रहो,
कहेंगे सब कुछ तुम्हारे श्वास।।

-त्रिलोचन शास्त्री

❖ ज्ञान मात्र जानना नहीं वैसा हो जाना है।

❖ प्रतिपल आत्म भाव में जीना ही स्वाध्याय है।

13.

हम झूठ क्यों बोलते हैं?

अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि उन्हें झूठ से नफरत है। अगर झूठ किसी को पसन्द नहीं तो फिर ये आता कहाँ से है? या फिर झूठ का औचित्य ही क्या है?

दरअसल झूठ प्रायः बच्चे बड़ों से सीखते हैं। कई बार सामाजिक शिष्टाचार निभाने के लिए हम लोग बड़ी सहजता से झूठ बोल देते हैं, जैसे बच्चों से यह कहलवाना कि 'कह दो हम घर पर नहीं हैं'। इस तरह अनजाने में हम बच्चों के मन में विष वमन कर देते हैं और वो आसानी से सीख जाते हैं कि कैसे झूठ बोल कर सामाजिक लोक लाज बचाई जा सकती है। अगली पीढ़ी अधिक चतुर होने के कारण, इस झूठ रूपी औजार का इस्तेमाल अन्य मामलों में करना भी शुरू कर देती है।

प्रायः हम सच से इसलिए बचते हैं क्योंकि सच्चाई की डगर देखने में कठिन जान पड़ती है। पर है इसका उल्टा। भले ही प्रारम्भ में रास्ता कुछ कठिन लगता है, पर आगे चलकर बड़ी ही आसानी हो जाती है; जीवन यात्रा में। जबकि झूठ बोलने वाले को अपनी यात्रा में, सदैव सावधान एवं चौकन्ना रहना पड़ता है। इसीलिए कहा जाता है कि झूठ बोलने वाले की याददाश्त प्रायः अच्छी होती है। कहना चाहिए, उसकी मजबूरी है कि पहले क्या-क्या और कब-कब झूठ बोला, इसका सिलसिलेवार ब्योरा रखे; अन्यथा उसकी पोल खुल

जायेगी। इसके विपरीत सच बोलने को कुछ याद रखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जाहिर है उसका जीवन बिल्कुल सीधा और सरल होता है।

एक बात और जब हम पहली बार झूठ बोलते हैं, तो कुछ मुश्किल होती है; क्योंकि अन्तर्मन उसका विरोध करता है। बाद में हमारा ऐसा अभ्यास हो जाता है कि हमें पता ही नहीं चलता, हमारे झूठ बोलने का।

कई बार किसी को प्रभावित करने के लिहाज से हम झूठ का सहारा लेते हैं। जब हममें इस तरह की वाक्पटुता आ जाती है तो वस्तुतः हम झूठ को सच की तरह बोलने लगते हैं।

कभी-कभी तो हम सच को भी झूठ या फिर झूठ से भी बदतर बना देते हैं। ऐसा तब होता है जब हम सच का इस्तेमाल ऐसे हथियार के रूप में करते हैं कि दूसरा उसके कारण सामाजिक रूप से नग्न हो जाता है अर्थात् उसकी सामाजिक मान-प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है।

वस्तुतः हम सच के पक्ष में ना जाकर, सच को अपने पक्ष में लाकर खड़े करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। इसकी वजह यह है कि हम अच्छे होना नहीं चाहते, बस येन-केन प्रकारेण, अच्छे दिखना चाहते हैं।

वैसे भी प्रायः 'सत्य' सापेक्ष होता है, निरपेक्ष 'सत्य' तो कम ही होते हैं और जो होते भी हैं वे प्राकृतिक तथ्य होते हैं, जिन्हें बदलना मनुष्य के बूते का नहीं। अतः निम्न संकेतों को ध्यान में रखें व थोड़ा-सा साहस करें; तो सच बोलने की राह बिल्कुल आसान हो जायेगी:-

- सच बोलना शुरू में कठिन लगता है किन्तु आगे का पथ अति सुगम है।
- ऐसा सच झूठ से भी बदतर है जो दूसरे की गरिमा को गिराता हो।

- झूठ थोड़े समय का आवरण तो बन सकता है किन्तु आगे की राह अति कठिन बना देता है।
- झूठ से निर्मित मान प्रतिष्ठा हमारे जीवन को खोखला कर देती है। अतः इसी जीवन में उसका प्रायश्चित भोगना ही पड़ता है।
- कई बार बोला गया झूठ बोलने वाले को सच प्रतीत होने लगता है।

वस्तुतः झूठ व सच के बीच प्रायः एक झीना पर्दा होता है। कहना होगा कि कई बार हमारा नजरिया ही तय करता है कि झूठ क्या है और सच क्या है।

इसीलिए अपने अन्तर्मन की आवाज सुनें, उससे बड़ा निर्णायक कोई भी नहीं है। क्योंकि बाहर की सारी सृष्टि तो आपके द्वारा निर्मित - वो बिम्ब है जो आप देखना चाहते हैं, ना कि वो जो वास्तव में है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि चाहे भले ही पूरा संसार आपसे प्रभावित हो जाय, किन्तु अगर आप स्वयं अपने से प्रभावित नहीं हैं अर्थात् आपका अन्तर्मन सन्तुष्ट नहीं है, तो फिर इस महान पराक्रम को व्यर्थ ही माना जायेगा।

♦ ♦

❖ गज़ब ये है कि अपनी मौत की आहट नहीं सुनते,
वो सब के सब परेशाँ हैं वहाँ पर क्या हुआ होगा।

–दुष्यन्त कुमार

❖ बुद्धि न भी समझे तो समझाने में समर्थ है;
और हृदय समझ भी ले तो समझाने में असमर्थ है।

14.

क्या झूठ पकड़ से बाहर होता जा रहा है?

आजकल झूठ को पकड़ना दिन-प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। कारण यह है कि लगातार झूठ बोलने की वजह से बोलने वाला उसका अभ्यस्त होता जाता है और फिर उसका प्रस्तुतीकरण सच की तरह ही होता है कहना चाहिए उसे पता ही नहीं रह जाता कि वो झूठ बोल रहा है। आइए एक उदाहरण से इसको समझने का प्रयत्न करते हैं। मसलन किसी वार्तालाप में एक व्यक्ति ने किसी के बारे में कुछ बोला। तो जब उस व्यक्ति को पता चलता है कि उसके बारे में अमुक व्यक्ति ने झूठ बोला है तो स्वाभाविक तौर पर उसके मन में आता है कि जिस व्यक्ति ने जिससे भी ऐसा कहा है उनका आमना-सामना कराकर स्थिति को स्पष्ट कर दिया जाये, जिससे उस पर लगे झूठे इल्जाम से उसे निजात मिल सके।

व्यावहारिक तौर पर निजी अनुभवों में भी मैंने पाया कि ऐसे में झूठ बोलने वाला व्यक्ति प्राय: स्थिति को भाँपते हुए बात को पलट देता है कि ऐसा तो उसने अमुक व्यक्ति के बारे में कहा ही नहीं। वस्तुत: यह उसके स्वभाव (व्यक्तित्व) के कारण होता है। अर्थात् कठोर एवं दृढ़ स्वभाव वाला व्यक्ति स्थिति की नजाकत को समझते हुए अपने बयान बदलने में माहिर होता है और फिर जिस व्यक्ति से उसने बोला होता है वो झूठा साबित हो जाता है और परिस्थिति बिल्कुल ही उलटी हो जाती है तथा दूसरे व्यक्ति की स्थिति नाहक

ही दयनीय हो जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने झूठ पकड़ने वाली मशीन बनायी, किन्तु अफसोस झूठ पकड़ने में वो प्राय: असफल हो जाती है। वजह यह है कि वो मशीन सामान्य इंसान के भाव-विचार के अनुकूल होने वाले प्रभाव को मापती है। जैसे अगर कोई झूठ बोलेगा तो अन्दर ही अन्दर उसे डर होगा कि कहीं उसका झूठ पकड़ न लिया जाए और फलस्वरूप उसकी श्वांस क्रिया, हृदय गति व शरीर का ताप परिवर्तित हो जायेगा। दरअसल यह सीधे-सादे इस सिद्धान्त पर आधारित है कि - 'चोर की दाढ़ी में तिनका'। जो कि भयवश होता है किन्तु जब झूठ बोलने वाला इतना अभ्यस्त है कि निडर हो जाये तब भला झूठ पकड़ने वाली मशीन खुद ही झूठी साबित क्यों नहीं हो जायेगी।

अर्थात् अगर किसी सीधे-सरल व्यक्ति पर झूठ का इल्जाम लग जाय और फिर उसे झूठ पकड़ने वाली मशीन से गुजारा जाये तो वाकई वो झूठा साबित हो जायेगा। वजह उसका भयग्रस्त होना है क्योंकि ऐसा व्यक्ति आक्षेप लगते ही लोकलाज वश अपराधबोध से भर जाता है और फलस्वरूप उसके अन्दर चल रहे भाव-विचार वैसा परिवर्तन कृत्रिम रूप से पैदा कर देते हैं।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि लोग झूठ-सच का पर्दा उठाने के बजाय सामाजिक तौर पर अपनी मान प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए वो बात कहना चाहते हैं जो उनके लिए आगे चलकर लाभकारी हो। दूसरे दृढ़ व्यक्तित्व के लोग दूसरों व स्वयं के अनुभवों से यह जान चुके हैं कि न्यायिक प्रक्रिया इतनी जटिल व लम्बी है कि उसके अन्तराल में ही उनका जीवन प्राय: चैन से गुजर जाता है। फिर भला उन्हें वैसा करने से क्यों गुरेज होगा।

अत: जीवन में ऐसी स्थितिंयों के आने पर क्या करना चाहिए इसके लिए निम्न तथ्य द्रष्टव्य हैं :-

कभी भी लोगों को आमने-सामने लाकर झूठ को साबित करने की कोशिश न करें क्योंकि इससे कमजोर (कोमल) स्वभाव वाले

व्यक्ति को नाहक ही अपराधबोध हो जायेगा।

- किसी ने अगर किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में कुछ शुभ कहा है तो उसे जरूर सूचित करें, किन्तु अशुभ बात के संदेशवाहक कदापि न बनें।
- न्यायिक प्रक्रिया की जटिलता हम सब के मन में रची-बसी जटिलता को प्रतिबिम्बित करती है।

जब हम अपने मामूली मसले (घरेलू या कार्यक्षेत्र के) आपस में नहीं निपटा पाते तो न्यायिक प्रक्रिया का जरूरत से ज्यादा लम्बी अवधि वाला हो जाना अवश्यम्भावी है।

अपने को सही साबित करने की कभी भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि तुम्हारे मित्रों (अपनों) को उसकी जरूरत नहीं एवम् विरोधी कभी मानेंगे नहीं।

♦ ♦

❖ अन्धकार कछुए सा बैठा पृथ्वी पर,

कछुए पर बैठा है नीला आकाश।

इतने बड़े बोझ के नीचे भी;

दबी नहीं छोटी-सी घास।।

15.

क्रोध क्यों होता है।

इच्छा पूर्ति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होने पर जो भाव दशा बनती है उसे क्रोध कहते हैं। प्रायः हम लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति पर हमें गुस्सा आ रहा है जब कि सत्य यह है कि गुस्सा हमेशा अपने ऊपर ही आता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति हमारे अनुसार आचरण नहीं करता तो हमें हमारी असफलता पर हताशा उत्पन्न होती है और परिणाम होता है क्रोध जिसमें निमित्त हम जरुर दूसरे को बनाते हैं परन्तु उसका सम्पूर्ण प्रभाव हमारे ऊपर ही पड़ता है। इसीलिए कहा जाता है क्रोध करने वाला व्यक्ति ही उसके दुष्प्रभाव को झेलता है न कि वह व्यक्ति जिसको निमित्त बनाया जाता है या जिस पर गुस्सा किया जाता है।

किसी विचारक ने बिल्कुल ठीक कहा है 'क्रोध मनुष्य की हार का प्रतीक है'। अब अगर यह बात संज्ञान में रहे तो क्रोध के आगोश में जाने के पहले ही हम सचेष्ट हो सकते हैं। यह दर असल तभी सम्भव है जब हमारे मानस पटल पर जरा ठहराव हो जो कि निरन्तर प्रेक्षण (Introspection) अन्तर्दर्शन करने से हो पाता है।

इस पूरी प्रक्रिया को इस तरह समझा जा सकता है। जब कोई उद्दीपक या घटना हममें प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है तो अगर हम अपने मनोभावों के प्रति सजगता बनाये रखते हों तो उसके प्रभाव में आने के पहले ही पता चल जाता है कि कैसा भाव मन में उठ रहा है। अब

चूँकि उस भाव का आप दर्शन करने लगे इसलिए उसकी तीव्रता अपने आप क्षीण होने लगती है कारण यह है कि प्रेक्षक और प्रेक्षण करने वाली स्थिति, दृष्टा व दृष्टव्य का भेद मिटते ही उसका प्रभाव भी तिरोहित होने लगता है। और फिर इस बीच आप विवेक पूर्ण चिन्तन कर लेते हैं कि इसका दुष्प्रभाव मुझ पर ही होना है तो फिर जानबूझ कर कोई अपना नुकसान क्यों करना चाहेगा।

क्रोध में आपके चेहरे का लाल हो जाना साधारण क्रिया नहीं है इसके पहले आपके अन्दर कई रासायनिक क्रियाएँ हो चुकी होती हैं जिसके परिणाम स्वरूप रक्त संचार असामान्य हो जाता है तभी तो चेहरे पर अतिरिक्त रक्त जमा होने के कारण लाल रंग हो जाता है। बस इतनी समझ काफी है क्रोध से बचने के लिए लेकिन इस जानकारी (ज्ञान) के साथ-साथ अभ्यास बहुत जरुरी है।

♦ ♦

❖ शक्ति अगर सीमित है
तो हर चीज़ अशक्त भी है
भुजाएँ अगर छोटी हैं
तो सागर भी सिमटा हुआ है
सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है
जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है।

–सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

16.

ईर्ष्या कहाँ से उपजती है?

मूल इंसानी भाव दो हैं। एक है– 'प्रेम' और दूसरा है– 'भय'। बाकी सभी भाव इन्हीं दोनों की वंश वृद्धि से उपजते हैं। खोलकर कहें तो शान्ति, करुणा एवम् श्रद्धा आदि प्रेम के वंशज हैं और क्रोध, हिंसा, आक्रामकता एवम् ईर्ष्या आदि भय से उपजे हैं।

दरअसल और मूल में जायें तो कह सकते हैं कि संकुचन भय का मूल है और 'विस्तार' (उदात्तता) प्रेम का। तभी तो कहा गया है कि विस्तार ही जीवन है और संकुचन मौत। क्योंकि संकुचन में हम अपने को अलग करके देखते हैं जबकि विस्तार में हम सब कुछ एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित पाते हैं।

आइये अब देखते हैं कि ईर्ष्या कहाँ से आती है। वस्तुत: संकुचित होते ही हम अस्तित्व से अपने को अलग-थलग कर लेते हैं। फिर हमें अपनी अस्मिता का संकट महसूस होता है। तब हमारे अन्दर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं। और ऐसी ही एक प्रतिक्रिया है 'ईर्ष्या'।

मूलभूत रूप से प्रेम विहीन सोच हमें सबसे काट देती है। और हमें लगता है कि हम अकेले हैं तब हम अपनी शक्ति, सामर्थ्य और पौरुष से अपने को मजबूत बनाने में जुट जाते हैं। पाते हैं कि कुछ लोग पहले से ही बहुत समृद्धिशाली हैं अर्थात् तुलनात्मक ढंग से अधिक मजबूत हैं पद से, पैसे से या फिर पौरुष से। तो हम उनकी

ओर देखते ही हीन भावना से भर जाते हैं और फिर शुरु होती है तुलना की विषाक्त प्रवृत्ति। उनके जैसा बन पाना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। लगता है उनकी जगह मुझे होना चाहिए किन्तु ऐसा कहना बड़ा बचकाना प्रतीत होता है। अतः आसान होता है उनमें कमी निकालना और निन्दा रत रहना। क्योंकि ऐसा करते ही मन को बहुत अच्छा लगता है कारण यह है कि प्रकारान्तर से हम अपनी प्रशंसा कर रहे होते हैं। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति जो कि मेरा समकक्षी रहा है और अब आगे बढ़ गया हो तो हम तरह- तरह से यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि उसने गलत तरीके से प्रगति की है और इस तरह हम अपने मन को सुकून देने की असफल कोशिश करते रहते हैं। मानव मन की सीधी सोच मात्र यह है कि सिर्फ वह ही ठीक है बाकी सब कुछ न कुछ गलत ही होते हैं अर्थात् पूरी तौर पर केवल 'मैं' ही ठीक होता हूँ। अब 'मैं' ठीक बाकी सब गलत के दुष्परिणाम हम सब जानते हैं।

अतः सचेत रहने की जरूरत है कि जब भी मन आलोचना में रस लेने लगे, तो समझ लो हम अधोगति में जाने की पूरी तैयारी में लग चुके हैं।

इसके विपरीत जब हम दूसरे से अपने को जुड़ा हुआ मानते हैं तो उसकी खुशी में भी प्रसन्नता अनुभव करते हैं और इस तरह उदात्त भावना की ओर उन्मुख होने लगते हैं।

ध्यान रहे कि ईर्ष्या का कीड़ा मनुष्य को खोखला कर देता है और हम तिल-तिल कर जलन व घुटन में जीवन काटते रहते हैं। सारांशतः जब भी मन दूसरे के बारे में चिन्तन-मनन करने लगे तो समझना चाहिए कि ऐसा हमारी ही किसी नासमझी की वजह से हो रहा है क्योंकि जो कुछ भी करणीय है वो हमेशा अपनी ओर उन्मुख होकर ही किया जाना है वरना प्रतिक्रिया में हम निषेधात्मक भावनाओं से भरने लगते हैं और फिर धीरे-धीरे छीजना शुरू कर देते हैं।

अपनी मानसिक दुनियाँ को दुरुस्त करें, सारी दुनियाँ स्वतः

ठीक दिखने लगेगी। दृश्य हमेशा ही खूबसूरत है, दृष्टि ठीक करने की जरूरत है।

♦ ♦

❖ ब्रह्म जगत का बीज है,
जो नहिं साको त्याग।
जगत ब्रह्म में लीन है,
कहहु कौन बैराग।।

–कबीर

❖ रहिमन बात अगम्य की,
कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं,
कहत ते जानत नाहिं।।

–रहीम

❖ परमात्मा सीमित और चेतन संसार का अनन्त मन है।

–खलील जिब्रान

17.

"दुश्चिंता" और इससे बचाव

चिंता करना मन का स्वभाव है और जब चिंता गहरी/विकट हो जाती है तो उसे दुश्चिंता (Anxiety) कहते हैं; जो कि मानसिक स्वास्थ्य पर अवांछित प्रभाव डालती है। पहली बात यह है कि एक सीमा तक तनाव (Tension) अपरिहार्य है, क्योंकि उससे सामान्य चिन्ता (Normal Anxiety) पैदा होती है जो कि किसी कार्य को ठीक से निष्पादित करने हेतु जरूरी है। दरअसल तनाव (Tension) एवं कार्यक्षमता (Performance) का सम्बन्ध निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

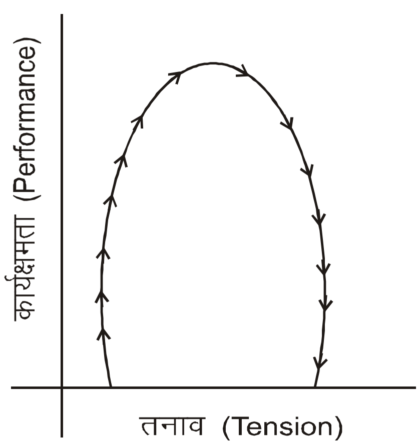

चित्र से प्रकट है कि एक सीमा तक तनाव बढ़ने से कार्य क्षमता बढ़ती है और उस सीमा के बाद तनाव बढ़ने पर क्षमता का ह्रास शुरू हो जाता है।

तनाव (Tension) को समूल नष्ट करने की जरूरत कभी नहीं होती। वस्तुतः तनाव-शून्य अवस्था मृत्यु की स्थिति है। अब अगर दुश्चिंता का स्तर आ गया है यानि कि उसने हमारी कार्य क्षमता को प्रभावित करना शुरू कर दिया है और हमारी दिनचर्या भी अस्त-व्यस्त हो चली है, तो हमें उसका प्रबन्धन करना होगा। दुश्चिंता के प्रमुख लक्षण निम्न हैं-

- मुँह सूखना (Dryness of Mouth)
- कँपकपी लगना (Shivering)
- धड़कन बढ़ना (Palpitation)
- पसीना आना (sweating)
- बार बार पेशाब लगना (Micturition)
- हाथ पैर ठंडे होना (Numbness)

प्रबन्धन के लिए सर्वप्रथम शारीरिक लक्षणों का शमन करना होता है जिसके लिए माँसपेशीय तनाव मुक्तता की प्रक्रिया एवं तत्पश्चात् पेट से धीमी-गहरी स्वांस लेना सिखाया जाता है। याद रहे यह अभ्यास नियमित करना होता है। इसकी वजह यह है कि दुश्चिंता का प्रभाव हमारे ऊपर दो तरह से पड़ता है।

(i) मांसपेशीय तनाव होना अर्थात् माँसपेशियों का कड़ा हो जाना एवं

(ii) स्वाँस-प्रस्वाँस का अनियमित हो जाना।

इसीलिए उपचार में इन्हीं दोनों को नियन्त्रित किया जाता है। और जैसा कि हम सभी जानते हैं कि जीवन में यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है अतः पहले शरीर को तनाव मुक्त करना (Progressive Mascular Relaxation) एवं बाद में पेट से धीमी-गहरी स्वाँस (Diafram Deep Breathing) लेना सिखाया जाता है।

हाँ, एक बार गौर तलब है कि आजकल प्राय: हम लोग दैनिक क्रिया कलापों की संलिप्तता में तनाव (Tension) या अवसाद (Depression) आदि शब्दों का प्रयोग बहुतायत से करने लगे हैं, जो कि अनुचित है। कारण यह है कि जब हम बार-बार अपने को निषेधात्मक संदेश देते हैं तो परिणामस्वरूप हमें वैसा महसूस होने लगता है। इस प्रकार आभासी तौर पर हम दुश्चिंता पैदा कर लेते हैं।

हाल के दिनों में यह भी देखा गया है कि लोग (विशेषकर किशोरावस्था के) मोबाइल/इंटरनेट में मनोरंजन करते-करते दुश्चिंता का शिकार हो रहे हैं। महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने पहले ही कह दिया था -

"I fear the day when technology will surpass our human interaction & the world will have a new generation of idiots."

अर्थात् ''मुझे डर है कि एक दिन यान्त्रिकता मानव संवाद को पार कर जायेगी और संसार में एक खास तरह की मन्दमति पीढ़ी का अभ्युदय होगा।'' अगर हम सब सचेत नहीं हुए, तो वो दिन दूर नहीं है, क्योंकि वर्तमान समय में काफी कुछ लक्षण उसी तरह के नजर आने लगे हैं।

सारांशत: दुश्चिंता से बचने के लिए निम्न सुझाव दृष्टव्य हैं -

1. जहाँ तक सम्भव हो अपनी दिनचर्या में नियमितता बनाये रखें।

2. कम से कम सूक्ष्म शारीरिक व्यायाम/आसन के पश्चात् प्रतिदिन दो बार 10-15 मिनट धीमी-गहरी स्वाँस (Deep Breathing) का अभ्यास जरूर करें।

3. प्रात: एवं सोने के पूर्व कुछ देर अन्तर्दर्शन (Introspection) करने की आदत बनायें।

4. जब भी समय मिल पाये कम से कम एक बार शवासन की मुद्रा में अपने शरीर को शिथिल करते हुए, माँसपेशीय तनाव मुक्तता (Mascular Relaxation) का अनुभव अवश्य करें।

5. चिन्ता एवं भय की स्थिति में बचाव की बात न सोचकर उसे चुनौती देते हुए कहें -

''अधिक से अधिक मृत्यु ही तो होगी और उस पर किसी का वश नहीं है तो फिर डरना कैसा?'' ऐसा आत्म सुझाव देते ही घबराहट के लक्षण क्षीण होने लगेंगे।

6. छोटी-छोटी बातें जीवन में चिन्ता करने की नहीं हैं और जरा सोचिए सारी बातें जीवन के परिप्रेक्ष्य में छोटी ही तो हैं।

7. तनाव (Tension), दुश्चिंता (Anxiety) या अवसाद (Depression) जैसे शब्दों का बार-बार प्रयोग कर, अपने को निषेधात्मक संदेश न दें।

8. आभासी दुनिया धीरे-धीरे आपका सम्बन्ध वास्तविक दुनिया से विलग कर देती है; अत: मोबाइल/इंटरनेट का मात्र उद्देश्य पूर्ण प्रयोग करें। वस्तुत: ये अधुनातम यन्त्र आपको शनै: शनै: कल्पना लोक में ले जाकर आत्ममुग्धता की ओर धकेल देते हैं और मानसिक रुग्णता शुरू हो जाती है।

उपसंहार के तौर पर कह सकते हैं कि मन की प्रकृति को समझें। दरअसल जो भी चीज हमें महत्त्वपूर्ण होने का अहसास कराती है साथ-ही-साथ हमें एकांगी कर कमजोर भी कर रही होती है। मन की इसी कमजोरी का फायदा उठाते हुए तरह-तरह के उपकरण बनाये जा रहे हैं, जो हमें धीरे-धीरे लोगों से अलग कर रहे होते हैं।

आखिरी बात, मशीन के साथ खेलना आप में वो भाव कभी भी नहीं पैदा कर सकता, जोकि इंसान के साथ खेलने में होता है। इसीलिए मनोवैज्ञानिक तौर पर मशीन के साथ खेलने को खेल (Game) माना ही नहीं जाता; वो तो मात्र टाइम पास है।

क्या खूब कहा है किसी ने ....

पायी हुई दुनिया तो संभाली नहीं जाती।
खोयी हुई दुनिया के निशां ढूँढ़ रहे हैं।।

♦ ♦

18.

जीवन में अवसाद (उदासी) का महत्व

यह सच है कि एक हद तक जीवन में उदासी/अवसाद की आवश्यकता होती है। वस्तुत: जीवन की परिस्थितियों में प्राय: हम सभी एक स्तर पर बेचैन (restless), उत्तेजित (excited) या फिर आवेग (impulse) की दशा में रहते हैं और बाहर की दुनिया में खोये रहते हैं। कहना चाहिए - अपने को एक भुलावे की स्थिति में रखते हैं। तभी तो प्राय: कुछेक समय के लिए एकान्त होने पर शिकायत करते नजर आते हैं कि समय नहीं कट रहा, बोरियत हो रही है। दरअसल मूलरूप से हम अपने साथ नहीं रहना चाहते और इस तरह दूसरों की उपस्थिति में समय आसानी से कट जाता है।

अब अगर किसी कारणवश ऐसी परिस्थिति बनती है कि जो हमारे मन के प्रतिकूल होती है तो हम उदासी/अवसाद के शिकार हो जाते हैं। वास्तव में जब हम उदास होते हैं, तभी अपने बहुत नजदीक होते हैं या यूँ कहें, तभी हमारा अपने से निजी साक्षात्कार होता है और हम अपने अन्तर्तम् को ठीक से समझ पाते हैं। क्योंकि उस समय हमारी वृत्ति अन्तर्मुख होती है तथा हम वास्तविकता के बहुत निकट होते हैं। बशर्ते हममें अन्तर्दर्शन (introspection) की प्रवृत्ति होनी चाहिए। हाँ, ये बात और है कि अगर उदासी ज्यादा हो गयी है तो उस अवसाद (Depression) से निपटने के लिए मनोवैज्ञानिक उपचार की आवश्यकता होती है। अवसाद (Depression) की स्थिति को निम्न

रूप से दर्शाया जा सकता है.....

तनाव (Stress) –> दुश्चिन्ता (Anxiety) –> अवसाद (Depression) – अवसाद की स्थिति में तीनों स्तर पर गिरावट देखी जा सकती है -

भाव (Feelings) - मन का खराब रहना

विचार (Thoughts) - निषेधात्मक विचारों का आना

कार्य (Actions) - कर्म के प्रति अनिच्छा

तो ऐसे में व्यक्ति को सुझाव दिया जाता है कि वह अपनी दिनचर्या व्यवस्थित करे और फिर उसे समय-सारिणी (Time - table) के अनुकूल विधिवत् लागू करे। ऐसा करना बिल्कुल यन्त्रवत् (Robotic) लग सकता है, किन्तु फिर भी उसको सुनिश्चित करना है कि वैसा होता रहे। कारण यह है कि जब आप एक छोटा सा दैनिक कार्य सम्पादित कर लेते हैं तो आपको उसकी प्रतिपुष्टि (Feedback) मिलती है जिससे आपको अगला कार्य करने की ऊर्जा (Energy) स्वत: प्राप्त हो जाती है। यह सिलसिला शुरू हो जाता है। ऐसे में दो न करने वाले कार्य (Don't) बताये गये हैं-

1. सोने के अतिरिक्त लेटना
2. एकान्त में बैठकर सोचना

क्योंकि ये दोनों स्थितियाँ अवसाद में इजाफा करती हैं। जिस बात पर बल दिया जाता है वह है कि भले ही धीरे-धीरे कार्य किये जायें किन्तु जीवन-चर्या से सम्बन्धित सभी कार्य जरूर सम्पादित हों; जिससे उदासी का घेरा अपने आप कमजोर पड़ता है। आपके जीवन में पुन: सक्रियता प्रवेश कर जाती है। अन्तत: कह सकते हैं कि जीवन में रस घोलने के दो प्रमुख स्रोत हैं।

1. गहरे मित्र/जीवनसाथी के साथ प्रगाढ़ता अर्थात् सभी भावों/विचारों की साझेदारी करना।

2. एक सक्रिय शौक (Active Hobby) का होना जिसके द्वारा नियमित रूप से अपने को तरोताजा किया जा सके।

महान मनोविश्लेषक सिग्मण्ड फ्रायड ने बिल्कुल ठीक कहा है-

"Work & Love these are the basics without them there is Neurosis."

अर्थात् कार्य (कर्मशीलता) एवं प्रेम (स्नेह तत्व) जीवन के आधार हैं और इनमें से किसी के भी अभाव की स्थिति में, व्यक्ति मानसिक रूप से रुग्ण हो जाता है।

♦ ♦

❖ समस्त मानव-ज्ञान अनिश्चित तथा भ्रमपूर्ण है; क्योंकि प्रत्यक्ष भी प्रामाणिक नहीं है बल्कि मनोवेग से प्रभावित है।

❖ निराशा की ऊँची काली दीवार में भी बहुत छोटे रोशनदान-सी जड़ी रहती है कोई न कोई आकांक्षा। जिसमें उजाला फँसा रहता है और कबूतर पंख फड़फड़ाकर निकल जाते हैं।

-सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

19.

आत्महत्या क्यों करते हैं लोग

अपनी जान लेना या फिर किसी दूसरे की जान लेना, मूलतः एक ही मनोदशा की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं। अर्थात् जब व्यक्ति बेहद हताश-निराश होता है और कोई रास्ता नहीं सूझता तो फिर वो मरने-मारने पर आमादा हो जाता है। अब अगर व्यक्ति की आक्रामकता दूसरे की तरफ निर्देशित होती है, तो परहत्या अन्यथा अपनी ओर उन्मुख होने पर, आत्महत्या का रूप ले लेती है।

प्रतिक्रिया किस तरह की होगी, यह व्यक्ति की मानसिक संरचना अर्थात् मन की स्थिति पर निर्भर करता है। किसी ने बिल्कुल ठीक कहा है - "आत्महत्या सहायता माँगने हेतु की गयी आखिरी पुकार (तड़प) है।" (Suicide is the last cry for help.)

कारण यह है कि जीवन को सुरक्षित रखना (जिजीविषा) इंसान की मूलभूत प्रवृत्ति है। फिर भला कोई अपनी ही जान लेना क्यों चाहेगा? ऐसा होता ही तब है, जब उसे लगता है कि उसके जीवन में कोई नहीं रह गया है अर्थात् वह किसी भी व्यक्ति से अपना सह-सम्बन्ध ठीक से नहीं बिठा पाता। कह सकते हैं, कोई नहीं जो उसका ध्यान रख सके, या फिर कोई ऐसा भी नहीं जिसका वो ध्यान रखे।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि सर्वदा आत्महत्या की घटना एक भावनात्मक आवेग की स्थिति में होती है अर्थात् बहुत सोच-विचार

कर यह कार्य सम्पादित नहीं किया जाता है।

मूलतः व्यक्ति को जब यह लगने लगता है कि उसके जीवन का कोई 'अर्थ' नहीं रह गया है, तभी ऐसी मनोदशा की पृष्ठभूमि बननी शुरू हो जाती है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि शायद ही दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने जीवन के झंझावातों से जूझते हुए कभी न कभी आत्महत्या के ख्याल को अनुभव न किया हो।

एक और महत्त्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है कि कभी-कभी अति बुद्धिवादिता का दर्शन (Pseudo philosophy) भी व्यक्ति को ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर देता है। तभी तो एक समय में कुछ फ्रेंच दार्शनिकों ने यह निष्पत्ति निकाली थी - ''एक काम जो इस संसार में सम्पूर्णता से सम्पादित किया जा सकता है वह 'आत्महत्या' है।''

'एकाकीपन' जो निरर्थक रूप से जीवन में उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी व्यक्ति को इस ओर उन्मुख कर देता है।

दरअसल 'एकान्त' (Aloneness/Solitude) विधेयात्मक है जब कि 'एकाकीपन' (lonliness) पीड़ादायक है। कारण यह है कि 'एकाकीपन' में दूसरों के द्वारा परित्यक्त किये जाने का भाव छिपा हुआ है। यह तो हम सब जानते हैं कि सारा खेल मन में चल रहे भावों-विचारों का ही है।

हम लोगों ने लखनऊ शहर के ऐसे दस (10) परिवारों का सर्वेक्षण किया, जिनके बच्चों ने परीक्षा में सफल न होने के कारण आत्महत्या कर ली थी और जो बात सामने प्रमुख रूप से आयी, वो यह है कि उन सभी बच्चों के कोई गहरे दोस्त नहीं थे, तथा उनका किसी सक्रिय मनोरंजन (खेल-कूद, गायन व नृत्यकला आदि) से भी जुड़ाव नहीं पाया गया।

चौंकाने वाला तथ्य यह भी है कि सामान्य लोग मानसिक रोगों से ग्रस्त लोगों की तुलना में प्रायः अधिक 'आत्महत्या' करते देखे जाते हैं।

सारांशतः इससे बचने हेतु निम्न सुझाव द्रष्टव्य हैं :

1. 'आत्महत्या' की ओर उन्मुख व्यक्ति की जीवन शैली में बदलाव आ जाता है जैसे बहिर्मुखी व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है और अन्तर्मुखी व्यक्ति बहिर्मुखता की ओर मुड़ जाता है। अर्थात् जब किसी की जीवन शैली में अचानक बदलाव आये तो सम्बन्धित लोगों को सावधान होने की जरूरत है।
2. अगर जान लें कि कोई व्यक्ति ऐसी मनोदशा में चल रहा है तो उसे उपदेश कदापि न दें बल्कि कुछ समय उसके साथ 'हाँ में हाँ' मिलाते हुए गुजारें। कारण यह है कि थोड़ा समय व्यतीत हो जाने पर प्रायः 'आत्महत्या' का विचार तिरोहित हो जाता है।
3. बच्चों में 'एकाकीपन' की भावना न विकसित होने दें अर्थात् समान वय के बच्चों के साथ घुलने-मिलने का अवसर उपलब्ध करायें तथा विभिन्न कला कौशल एवं स्वस्थ मनोरंजन वाली क्रियाओं में सहभागिता को बढ़ावा दें।
4. व्यक्तिपरक सोच व्यक्ति के विकास में निश्चय करके सहायक है, किन्तु प्राथिमक समूहों/संस्थाओं की उपेक्षा वरेण्य नहीं है अन्यथा अतिशय एकांगी सोच आगे चलकर जीवन को नीरसता से भर देती है।
5. अति बुद्धिवादिता से बचें क्योंकि 'बुद्धि' दुधारी तलवार है। अगर वह हमारी सभी उपलब्धियों की कारक है तो फिर वो कभी-कभी हमारी जिन्दगी को मशीनी एवम् एकांगी भी कर देती है। जिगर मुरादाबादी ठीक कहते हैं -

''इल्मे किताबी जेहन से सब हटाना चाहिए।
यह बड़ा पर्दा है इसको उठाना चाहिए।''

उपसंहार के तौर पर कह सकते हैं कि ''जीवन सदा ही अर्थपूर्ण है।'' अगर हमें कभी अर्थहीन लगे तो यह समझना है कि हमारी दृष्टि पटल पर धुंध जमी हुई है। जो कि करीबी व्यक्ति के

संस्पर्श एवं मन की कथा–व्यथा को व्यक्त करने से छँट जायेगी। सच ही तो है –

‘परमसत्ता अगर एक दरवाजा बन्द करती है तो तत्क्षण दूसरा दरवाजा खोल देती है। बस हमें उसे देखने के लिए अपनी दृष्टि को विस्तार देना है।’

♦ ♦

❖ ‘जिन्दगी’ एक कठिन पाठशाला है इसमें परीक्षा पहले ही हो जाती है और बाद में पढ़ाई।

❖ अपेक्षा, उपेक्षा और अहंकार दु:ख और तनाव का कारण है।

❖ Unhappiness is the result of struggling against the natural flow of experience.
(‘उदासी/दु:ख’ जीवन के सहज/प्राकृतिक अनुभवों के विपरीत संघर्ष का परिणाम है।)

❖ Education is learned ignorance.
(शिक्षा सीखा हुआ अज्ञान है।)

20.

जीवन एवम् नशा

“व्यक्ति की अन्तश्चेतना अपने स्वरुप में प्रकट होने के लिये अविराम कोशिश कर रही है और इस सतत कोशिश का नाम ही जीवन है।”

– **विवेकानन्द**

विवेकानन्द द्वारा दी गयी जीवन की उपर्युक्त परिभाषा बड़ी ही सटीक लगती है। वस्तुत: हम सभी किसी न किसी रूप में कुछ नायाब कर गुजरने की जुगत में लगे रहते हैं या यूँ कहें कि जिन्दगी में मजा तलाशते रहते हैं। क्योंकि हम सभी को खुशी या प्रसन्नता अथवा आनन्द की जरूरत होती है। उस अन्तश्चेतना की प्रकृति को, जो स्थिर व अन्तर्मुख होकर, अन्दर की यात्रा करते हुए, समझने की कोशिश करते हैं (जो कि प्राय: कम ही हो पाता है) वो जीवन को उर्ध्वगमन की ओर ले जाते हैं। मध्यम श्रेणी के लोग यदा–कदा ऐसी परस्थितियों में प्रभावित तो होते हैं और तात्कालिक प्रेरणा भी लेते हैं, एवं कुछ समय के लिये ही सही दिव्य अनुभूति से भी भरते हैं किन्तु पुन: भवसागर में उलझ जाते हैं। प्राय: कमजोर व्यक्तित्व वाले जल्दबाजी में मजा लेने के फेर में पड़कर, नशे के शिकार हो जाते हैं।

सोचा जाय तो हम सबको कोई न कोई नशा चाहिये ही होता है, अब वो चाहे जिस प्रकार का हो। इस बात को ठीक से कहा जाय

तो हर व्यक्ति को कुछ ऐसा तो जरूर चाहिये जिससे वो पुनः तरो-ताजा हो सके। कह सकते हैं कि मनोशारीरिक यन्त्र की आयलिंग-ग्रीसिंग (लुब्रीकेशन) तो होनी ही चाहिये, वरना सहजता, सरलता, तरलता समाप्त हो जाती है। इसलिये प्रायः देखने में आता है कि "कोऊ काहू में मगन, कोऊ काहू में मगन'' अर्थात हर व्यक्ति किसी न किसी सनक में लिप्त नजर आता है। वास्तव में हम सब किसी न किसी रूप में अपनी ही आदतों के गुलाम होते है और शायद इसीलिये कहा जाता है कि अच्छी आदतें बनाइये।

आइये, अब नजर इस बात पर डालते है कि लोग नशे के शिकार कब और क्यों होते हैं? वास्तव में दुनियां में हर इंसान को प्यार/स्नेह एवं खुशी चाहिये होती है। अब इसके अभाव में लोग विचलित होकर बहक जाते हैं। कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि ज्यादा आराम की जिन्दगी भी लोगों को और मजा खोजने की तलाश में नशे का शिकार बनाती है। तभी तो सुप्रसिद्ध लेखक जयशंकर प्रसाद जी कहते हैं-

अपना हो या औरों का सुख, बना कि बस दुख बना वहीं
कौन बिन्दु है रुक जाने का यह जैसे कुछ पता नहीं

कभी-कभी अति बुद्धिवादिता भी नशे का शिकार बनाती है; क्योंकि ऐसा व्यक्ति अपने को सबसे अलग मान बैठता है और सोचता है कि वे तो सामान्य लोग हैं जो जल्दी ही नशे के आदी हो जाते हैं, मैं नहीं होऊँगा, क्योंकि मैं विशेष व्यक्ति हूँ। जबकि जीवन जगत की सच्चाई यह है कि मादक पदार्थ तो सभी के जीवन को समान रूप से प्रभावित करेंगें फिर वह चाहे जितना बुद्धिमान हो। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये "अज्ञेय" ने बड़े ही प्यारे शब्दों में कहा है कि-

"एक बिन्दु तक कहानी तुम बनाते हो,
फिर कहानी तुमको बनाती है,
क्या तुम्हें उस बिन्दु की पहचान आती है।"

वस्तुतः उस बिन्दु की पहचान किसी को नहीं आती और

जिनको आती है वे कहानी ही नहीं बनाते"।

तो मुद्दे की बात यह है कि जीवन के सामान्य नियम तो सब पर समान रूप से लागू होते हैं, अतः जो पहले हमारे अग्रजों द्वारा अनुभूत किया जा चुका है, उससे सीखें और हर चीज का स्वाद चखने की कोशिश न करें; क्योंकि एक जीवन तो क्या कई जीवन लग जायेंगे सिर्फ संसार के सारे पदार्थों को चखने और स्वाद लेने में।

सारांशतः अति बुद्धिवादिता से बचें, क्योंकि यही तीन प्रमुख कारक हैं जो व्यक्ति को बहलाकर अधोगति की ओर ले जाते हैं। अगर इस बात को खोलकर कहा जाय तो निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं-

- धैर्य रखना परम आवश्यक है, क्योंकि आज की गतिक एवं आपाधापी भरी जिन्दगी में कई बार भटकाव, धीरज की कमी की वजह से होता है।
- व्यक्तिवादिता उन्नति एवम् आत्मविश्वास के लिए एक हद तक ठीक है किन्तु अपने खास लोगों के साथ जुड़ाव महसूस करना एवम् अनुभवी लोगों के समय-समय पर सुझाव आपकी जिन्दगी में रस घोल देते हैं और आप विचलित होने से बच जाते हैं।
- बुद्धिवादिता आज का नया रोग है। अर्थात अपनी बुद्धिमानी को प्रदर्शित करने के लिये लोग नये-नये प्रयोग करते नजर आते हैं। ध्यान रहे कि बुद्धि एक दुधारी तलवार है अतः अगर जरा भी चूके तो कदम आत्मघाती भी हो सकता है।

अतः जीवन में बुद्धि व भावनाओं के साथ-साथ आपके अपने करीबी (जिन पर आपको विश्वास है जैसे मित्र या फिर सगे सम्बन्धी)लोगों का भी महत्व है क्योंकि वे आपको जीवन रूपी केन्द्र की परिधि से बाहर जाने में आपकी सुरक्षा, संरक्षा करते रहते हैं।

♦ ♦

21.

सम्बन्धों का मनोविज्ञान

अगर हम व्यापक दृष्टि से देखें तो दुनिया में मात्र दो तरह के रिश्ते है:- एक वो जो हमें जन्म के आधार पर उपलब्ध होते हैं अर्थात् जैविक सम्बन्ध (पारिवारिक रिश्ते) और दूसरे वो जो हम स्वत: अपने बलबूते पर बनाते हैं अर्थात् हमारे मित्रगण।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि जैविक रिश्तों (kith & kin) में एक हद तक औपचारिकता होती है। वजह यह है कि इन सम्बन्धों में गुरुता व लघुता का भाव अवश्यम्भावी है क्योंकि क्रमिक विकास व श्रेणी बद्धता के कारण आपस में बराबरी का दर्जा मिल पाना असम्भव सा है जब कि स्वस्थ संवाद हेतु दोनों व्यक्तियों का समान तल पर होना आवश्यक है। जाहिर है परिवार में स्वस्थ संवाद की एक सीमा है अर्थात् पूर्ण रूप से सफल अभिव्यक्ति पारिवारिक रिश्तों या अन्य सगे सम्बन्धियों के बीच नहीं हो सकती। शायद इसी वजह से विचारकों का कहना है कि अपने सभी रिश्तों में मित्रता का रस घोल देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करते ही वो रिश्ता मजबूत हो जाता है और औपचारिकताएँ घट जाती हैं। लेकिन यह भी स्वीकारने योग्य तथ्य है कि इन रिश्तों में एक हद तक ही आप ऐसा कर सकेगें अन्यथा उस रिश्ते का अधिष्ठान (गरिमा) लड़खड़ाने लगता है और परेशानियाँ बढ़ जाती है।

रही बात मित्र-गणों की, सो वहाँ पूरी स्वतंत्रता है। और ऐसे

अन्तरंग संवादों में मन की दुरूह ग्रन्थियाँ भी खुल जाती हैं। साथ ही साथ कई मामलों में स्वत: स्फूर्त अन्तर्दृष्टि (insight) मिल जाती है जो अन्य किसी प्रकार से सम्भव नहीं होती।

पारिवारिक नाते-रिश्तों में हम सभी जानते है कि अपनी स्थिति को समझते हुये संवाद करना चाहिए किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि हर व्यक्ति को अभिव्यक्त करना नितान्त आवश्यक है; भले ही अतिशय विनम्रता का सहारा लेना पड़े।

अब बात करते हैं दुनिया के एक नायाब रिश्ते की और वो है पति-पत्नी का। यह रिश्ता पारिवारिक दायरे में भी आता है पर जैविक रिश्ता नहीं होता है।

वस्तुत: इस रिश्ते में दक्षता पा लेना असली कामयाबी है क्योंकि इसमें एक तरह से शुरू में बताये गये दोनों ही प्रकार के रिश्तों का सुन्दर समन्वय है।

विगत तीस वर्षो से भी अधिक अनुभवों के आधार पर जो नतीजे वैवाहिक सलाह (परामर्श) के बारे में निकले वे निम्नवत् हैं -

1. व्यक्तिगत निजता (personal space) का ख्याल जरूर रखना चाहिए। अर्थात् हर क्षण सब कुछ जान लेने का दुराग्रह नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से प्राय: व्यक्ति की गरिमा को ठेस पहुँचती है फलत: सम्बन्ध कमजोर होने लगता है।

2. Caring के बजाय sharing को बढ़ावा दें। ऐसा करते ही सम्बन्ध की गुणवत्ता बढ़ जाती है और मित्रता का भाव बाकी सारी समस्याओं को तिरोहित कर देता है।

3. संवाद कौशल (communication skills) बढ़ायें क्योंकि बहुत सी समस्याएं ठीक संवाद न हो पाने की वजह से पनपती हैं।

4. आपस में संवाद कम होना या न होना (communication gap) स्वयं में आगे चलकर एक बड़ी समस्या का रूप ले लेता है।

5. कभी-कभी अपने व्यक्तित्व का लबादा बाहर छोड़ना सीखें (try to be no body)- ऐसा करने से आपको दूसरे के

व्यक्तित्व को समझने में बड़ी आसानी होगी।

अन्ततः यह ध्यान रहे कि "हममें से प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ खुश होना नहीं चाहता है बल्कि उस तरह से खुश होना चाहता है, जिस तरह वो खुश रहने का आदी हो चुका होता है"। अतः संदेह (doubt) के स्थान पर विश्वास (faith) को वरीयता दें और ख्याल रहे कि जो भी हम बाहर अर्थात् दूसरे पर फेकते हैं वो दोगुना होकर हम पर वापस आता है क्योंकि जिन्दगी एक वर्तुलाकार आकृति (boom rang) की भाँति है। दूसरे के लिए जज एवं अपने लिए वकील न बनें। वस्तुतः जीवन में सदा अपने ऊपर कार्य करते रहने की जरूरत होती है और जो अपना विश्लेषण करना जानता है उसे और किसी का विश्लेषण करने की जरूरत ही खत्म हो जाती है। जीवन-यात्रा स्वयं से प्रारम्भ होकर स्वयं पर ही समाप्त होती है।

♦ ♦

- ❖ विचार ही बीज है, जीवन रूपी इस वृक्ष का।
- ❖ हमारे मन, बुद्धि, चित्त सहित समस्त भावनात्मक विकास का आधार हमारे विचार ही होते हैं।
- ❖ विचार ही सम्पूर्ण खुशियों का आधार है।
- ❖ बुढ़ापा आयु नहीं विचारों का परिणाम है।
- ❖ चेतना का विस्तार ही सही अर्थों में जीवन है।

22.

सम्बन्धों को कैसे सँवारें?

जीवन में समायोजन या सामंजस्य का कितना महत्त्व है यह इस बात से पता चल जाता है कि एक प्रसिद्ध मनोविज्ञानी ने कह डाला ...... ''समायोजन ही जीवन है'' (Life is nothing but just an adjustment-) वैसे भी बिना समायोजन के एक सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति समाज में रह भी तो नहीं सकता। या यूँ कहें कुछ भी सार्थक करने के लिए पहली जरूरत है समाज में शान्तिपूर्वक रहने की जोकि समायोजन किये बना सम्भव ही नहीं है। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना परम आवश्यक है कि समायोजन (Adjustment) दो तरह से करना होता है। (i) आन्तरिक समायोजन (अर्थात् अपने अन्दर कोलाहल/द्वन्द्व का न होना) और (ii) बाह्य अर्थात् दूसरों (समाज) के साथ सामंजस्य बिठाना और इसका क्रम भी यूँ ही है पहले आन्तरिक शान्ति फिर बाह्य शान्ति। इसी बात को हमारे एक गुरुजी बड़ी सरलता से कहा करते थे कि इंसान को दो बातों का ध्यान रखना चाहिए या ठीक से कहें तो दो ध्रुवों के बीच तालमेल बिठाने की जुगत करनी चाहिए....

1. पहली मन की मौज व 2. दूसरी जग की लाज।

देखिए यहाँ भी पहले स्वयं का ख्याल और फिर समाज की ओर ध्यान दिया गया है।

आइए अब कुछ युक्तियों की बात कर लें जो संवाद कौशल में

सजगता की ओर इशारा करती हैं। पहले वे तीन सूत्र हैं जिन्हें आप Donts (नहीं करना है) कह सकते हैं ....

1. Comparison (तुलना)
2. Criticism (आलोचना)
3. Correction (सुधारना)

दरअसल ये तीनों स्थितियाँ यह दर्शाती हैं कि आप किसी को कमतर समझ रहे हैं और जैसे ही ऐसी बातचीत शुरू करते हैं दूसरे के मन में निषेधात्मक (हीनता का भाव) उत्पन्न होता है और व्यक्ति आप से एक दूरी बनाना शुरू कर देता है। ऐसा सिर्फ एक ही परिस्थिति में किया जाना चाहिए जब वह व्यक्तिगत तौर पर आपकी राय माँग रहा हो और तब भी व्यक्तिगत विशेषताओं का हवाला देते हुए व्यक्ति को उत्साहित करना चाहिए न कि तुलना करके निराश।

अब तीन सूत्र हैं जिन्हें अपनाने से आप सबके प्रिय (चहेते) बन सकते हैं और वे तीन बातें हैं ....

1. Acceptance (स्वीकारना)
2. Approval (अनुमोदन)
3. Appreciation (प्रशंसा)

तीनों का क्रम भी प्राकृतिक तौर पर यही है। पहली बात अस्तित्व में जो कुछ भी है वो सब परमसत्ता के कारण है अर्थात् गलत/अनुचित होने का प्रश्न ही नहीं उठता अत: स्वीकारना ही श्रेयस्कर है। दूसरी बात जब आप अपना अभिमत दूसरे के पक्ष में व्यक्त करते हैं तो इससे दूसरे को बल मिलता है और फिर वह आपको अपना मानने लगता है। तीसरा और अन्तिम तो सर्व विदित है कि प्रशंसा किसे अच्छी नहीं लगती बशर्ते कि विवेकपूर्ण की गयी हो। अत: स्वस्थ समायोजन हेतु समाज में जब भी संवाद करें तो सजग रहें और उपर्युक्त गुरुमंत्र को ध्यान में रखें जीवन में शुभत्व स्वत: खिल उठेगा।

♦ ♦

23.

सत्य पर सामाजिक परम्परा सदैव भारी

सत्य की बात तो हमेशा होती है किन्तु इतिहास गवाह है कि सत्य धर्मा लोगों को कई बार तिरस्कार झेलना पड़ता है, न सिर्फ जीवन काल में बल्कि मरणोपरान्त भी। ऐसा ही एक उदाहरण रामायण काल के पात्र विभीषण का है। हम सभी जानते हैं कि विभीषण एक सच्चा सन्त था और पूरा जीवन सात्विकता के साथ जिया और सदा सत्य का पथ चुना। फिर भी उसे हमारा समाज आज भी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। वजह यह बतायी जाती है कि वह परिवार अर्थात् अपने बड़े भाई राजा रावण के विरोधी राम से जा मिला। अब अगर बात का खुलासा करें तो उसने तो अपने भाई को अगाह करते हुए सत् धर्म के पालन का सुझाव दिया था और इस पर उसके बड़े भाई ने सत्य पथ का अनुगमन के बजाय, उसे ही अपमानित कर निकाल दिया था। अब कोई यह बताए कि अगर परिवार का कोई व्यक्ति अधर्म के रास्ते पर चले तो एक सज्जन व्यक्ति का कर्तव्य क्या है? वह सत्य का अनुगमन करे या फिर परिवार के अनुसार अधर्म का रास्ता चुने। लगता तो यही है कि एक से एक घिनौने कृत्य परिवार, संगठन या फिर संस्था की आड़ में होते रहते हैं और कोई उँगली भी नहीं उठाता। और जो सत्य-धर्म पर चलता है उसे विद्रोही माना जाता है।

अजीब चलन है समाज का। राम की तो अनन्त महिमा है,

किन्तु राम के अनुगामी को मात्र इस बात के लिए निषेधात्मक व्यक्ति मान लिया जाता है कि उसने अधर्म में अपने भाई का साथ नहीं दिया।

यहाँ तक कि आज तक कोई अपने बच्चे का नाम 'विभीषण' नहीं रखता अर्थात् उसे एक बुरा व्यक्ति मान लिया गया जबकि उसने कभी सत्य-धर्म को नहीं छोड़ा।

वस्तुतः यह एक बड़ा प्रश्न चिह्न है हमारे सामाजिक व पारिवारिक ताने-बाने पर। सारांशतः हमारा ढाँचा सत्य के साथ न होकर सत्य को अपने पक्ष में लाने के फेर में रहता है। आये दिन बड़े-बड़े संगठन इस बात पर हड़ताल कर देते हैं और शर्त रखते हैं कि पहले उनके सदस्य को (जिसने कोई अपराध किया है) वापस लिया जाए अर्थात् उसका निलम्बन वापस लिया जाये। जबकि होना यह चाहिए कि संगठन को नैतिक जिम्मेवारी लेते हुए सर्वप्रथम उस व्यक्ति को निलम्बित करना चाहिए। स्पष्ट रूप से कहा जाये तो प्रायः सभी संगठन अपने सभी सदस्यों को संख्या बल के आधार पर सुरक्षा प्रदान करते हैं। चाहे फिर वो कितना ही अनैतिक कार्य कर रहा हो।

लगता है संगठन/संस्था अपनी 'अस्मिता' को कायम रखने की जुगत में सही-गलत, अच्छे-बुरे का भेद ही भूल जाते हैं। ठीक है कि सदस्यों के हितों की रक्षा होनी चाहिए, लेकिन किस कीमत पर। अगर सदस्यों के कुछ अधिकार हैं तो फिर उनके कुछ नैतिक कर्त्तव्य भी तो होने चाहिए।

जरूरत है आज के समाज में विभीषण जैसे व्यक्ति को प्रतिस्थापित करने की जिससे सत्य धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा हो सके और साहसी लोग सत्य का अनुगमन करते रहें, चाहे फिर भले ही संस्था/संगठन की 'अस्मिता' खतरे में क्यों न पड़ जाए।

♦ ♦

24.

सामाजिक संस्थाओं के संजाल में फँसा आदमी

हमारी सामाजिक संरचना कुछ इस तरह उलझी हुई है कि इंसान उसमें फँसता चला जाता है और अन्ततः संस्था की सुरक्षा/संरक्षा हेतु कई बार अपने को कुर्बान भी कर देता है, जबकि संस्थाएँ बनी हैं इंसान की जिन्दगी को सुघड़ बनाने के लिए।

एक बात और शायद भारत में यह बात ज्यादा ही लागू होती है। यहाँ संस्था अति महत्त्वपूर्ण है और व्यक्ति नाचीज होता चला जाता है। खुलकर कहें तो यहाँ कई बार यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति विवाह जैसी संस्था में अपना अस्तित्व ही भूल बैठता है अर्थात् नाते-रिश्तों के ताने-बाने में इतना उलझ जाता है कि उसे अहसास ही नहीं रहता कि वह एक स्वतन्त्र इकाई भी है।

कहना चाहिए वह एक परिवार/कुटुम्ब का हिस्सा पहले है बाई दि वे एक व्यक्ति भी है।

इसका परिणाम यह होता है कि लोग लोक-लाज के हिसाब से जीवन जीते रहते हैं। इसकी तुलना में पाश्चात्य देशों से यह बात सीखने लायक है जहाँ व्यक्ति को प्राथिमक रूप से मान्यता दी जाती है और अगर संस्था व्यक्ति के विकास में बाधा बन रही हो तो उसे त्यागकर अलग होने को गलत नहीं माना जाता।

गौरतलब बात यह है कि अगर व्यक्ति की सम्प्रभुता (गरिमा) ही नष्ट हो गयी तो फिर जीने का क्या मतलब? मैंने बहुत नजदीक

से देखा है कि वैवाहिक सम्बन्धों में अपने यहाँ अलगाव की बात परिवार व समाज के ठेकेदार तय करते हैं और इस तरह इंसान की निजता लगभग समाप्त ही हो जाती है।

खलील जिब्रान बिल्कुल ठीक कहते हैं कि जब तक व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं होगा, प्रेम का अनुभव नहीं कर सकता और जब तक व्यक्ति प्रेम का अनुभव नहीं करता उसके द्वारा कुछ भी नया रचा जाना असम्भव है।

कहना पड़ेगा कि सबसे पहले व्यक्ति को अपनी स्वतन्त्र सत्ता का अहसास होना चाहिए क्योंकि तभी प्रेम की अनुभूति हेतु भावदशा निर्मित होती है और बिना प्रेममय हुए जीवन जीना कुछ ऐसा ही है जैसे यान्त्रिक मानव का जीवन।

इस तरह जीवन की गुणवत्ता शनैः शनैः क्षीण होती चली जाती है। आँकड़ों में हम भले ही अपने मुँह मिया मिट्ठू बने रहें कि हमारे यहाँ तलाक का प्रतिशत विकसित देशों से बहुत कम है आदि-आदि।

व्यक्ति के जीवन में निखार आये इसके लिए निम्न सुझाव दृष्टव्य हैं -

1. किसी भी व्यक्ति की निजता, आत्म-सम्मान, सम्प्रभुता एवं प्रतिष्ठा को समुचित महत्त्व देना।

2. कोई भी संस्था व्यक्ति से बढ़कर नहीं है अर्थात् संस्था व्यक्ति की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए है न कि उसका हनन करने के लिए।

3. इस बात का गहरा अहसास कि व्यक्ति के लिए बिना स्वतन्त्र हुए, प्रेम मय हुए जीवन में कुछ भी सार्थक कर पाना असम्भव है।

4. व्यक्ति-विकास को बढ़ावा देना न कि घिसी-पिटी सामाजिक संस्थाओं के लिए व्यक्ति को कुर्बान होने देना।

अन्ततः जब समाज की एकमात्र इकाई व्यक्ति ही ठीक (स्वस्थ) नहीं होगा तो कैसी संस्था और कैसा समाज?

♦ ♦

25.

व्यक्ति विकास में सामाजिक संस्थाएँ कहाँ तक सहयोगी हैं?

जर्मन दार्शनिक नीत्शे कहते हैं ''अतिशय दिखावे वाले कार्य भी समाज में आलोचना का विषय कम ही होते हैं।'' जबकि दिखावे वाले कार्य ही समाज को खोखला कर रहे होते हैं। नीत्शे तो आगे चलकर यहाँ तक कहते हैं कि इंसान की दिखावे की आदत इतनी गहरी है कि जिस तरह त्वचा हमारे शरीर के अन्दर के अवयवों को ढंके रहती है, उसी तरह आत्मा की त्वचा दिखावा/खोल (Vanity) है।

समाज का गठन व्यक्ति को और विकसित करने के लिए ही हुआ है। जबकि देखने में यह आता है कि लोग एक दूसरे की मदद कुछ इस रूप में करते हैं- ''ना मैं चाल तेरी ना तू चाल मेरी''। इस तरह सतही लाभ के लिए मनुष्यता का ह्रास होता चला जा रहा है। अगर किसी व्यक्ति का चाल-चलन दुरुस्त करना है तो उसका सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए और पहले ऐसा हुआ भी करता था। किन्तु अब किसी को किसी से मतलब नहीं। या यूँ कहें कि अगर अनीतिपूर्वक किसी ने धनार्जन किया है तो उसके साथ समाज के बहुत से लोग अपने लाभ के कारण खड़े दिखते हैं और इस तरह उसे भी इतराने का अवसर मिल जाता है। अर्थात् समाज में पैसे की प्रभुसत्ता कुछ ज्यादा ही स्वीकारी जाने लगी है। जिसका परिणाम यह

है कि कोई भी गलत काम करने से लोगों को गुरेज नहीं होता, बशर्ते उसे आर्थिक लाभ होना चाहिए। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर देना उचित होगा कि सामाजिक बहिष्कार के अलावा कोई दण्ड वस्तुतः उसके सुधार का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता। व्यक्ति का निर्वाह समाज के बाहर नहीं हो सकता। अतः सामाजिक दण्ड ही असली दण्ड संहिता है।

सामाजिक संस्थाएँ इतनी कमजोर होती जा रही हैं कि किसी व्यक्ति को सामाजिक रूप से बहिष्कृत करने का साहस ही नहीं जुटा पातीं। इस तरह अनीतिपूर्ण ढंग से जीवन जीने वाले लोग पैसे के दम पर सारे कार्य अपने मुताबिक करवाने में सफल होते रहते हैं।

सामाजिक ताना-बाना आजकल व्यक्तिवादी सोच पर अधिक टिका हुआ है, जिसका हश्र यह होता है कि कोई किसी पर उँगली तब तक नहीं उठाता, जब तक उसके हित प्रभावित न हो रहे हों।

दूसरी बात यह दिखावा पसन्द दुनिया हमें यह प्रेरित करती है कि हम भले ही अच्छे न हों, किन्तु अच्छे दिखना जरूर चाहिए। इस तरह समाज व्यक्ति की उन्नति में सहयोगी न होकर कई बार उसकी अवनति में ही सहायक हो जाता है।

शायद यही वजह है कि असहिष्णुता एवं अधैर्य इतना अधिक हो गया है कि व्यक्ति आतंकवादी बन फिदायीन जैसा किरदार निभाने को तैयार हो जाता है।

अब समय आ गया है कि समाज की छोटी-छोटी इकाइयाँ जागरूक हों और संवेदनशील होकर व्यक्ति के विकास में सहयोग करें। छोटे-छोटे स्थानीय मसले, बड़े-बड़े न्यायालयों में नहीं सुलझाये जा सकते।

समाज की मूल इकाई व्यक्ति ही है और अगर व्यक्ति समुचित रूप से उन्नत नहीं हो सका, तो कुछ ही समय में धीरे-धीरे समाज अवनति के रसातल में चला जायेगा। इस तरह व्यक्ति की सतत उन्नत होने की जीवन यात्रा को गहरा धक्का लग सकता है। जो भी हो, जब

हम समाज के जागरूक होने की बात करते हैं, तो हमारा आशय व्यक्तिगत रूप से मनुष्यों के जागरूक होने से ही है। अब यह कैसे होगा? एक तरीका है ऊपर से नीचे की ओर और दूसरा तरीका है **जमीनी आन्दोलन कर नीचे से ऊपर की ओर।**

इस समय अपने देश के शीर्ष नेतृत्व में पर्याप्त सकारात्मकता दिख रही है और **वैसे भी ऊपर से परिवर्तन जल्दी आता है क्योंकि सामान्य लोग लोक लाज वश अनुसरण का रास्ता तुरन्त अपनाते हैं।**

आइए हम सब मिलकर समाज में दिखावे की बढ़ती हुई प्रवृत्ति में रोक लगाने का प्रयास करें एवं **अनैतिक आचरण करनेवाले व्यक्तियों से दूरी बनाने की कोशिश करें।** शेष कार्य अस्तित्व स्वयं संभाल लेगा।

♦ ♦

- उस द्वार से गुजरो जो मैंने तुम्हारे लिए खोला है। उस अन्धकार से नहीं, जिसकी गहराई को बार-बार मैंने तुम्हारी रक्षा की भावना से टटोला है।

  –अज्ञेय

- समाज अपराध की पृष्ठभूमि निर्मित करता है और अपराधी उसे कर देता है।